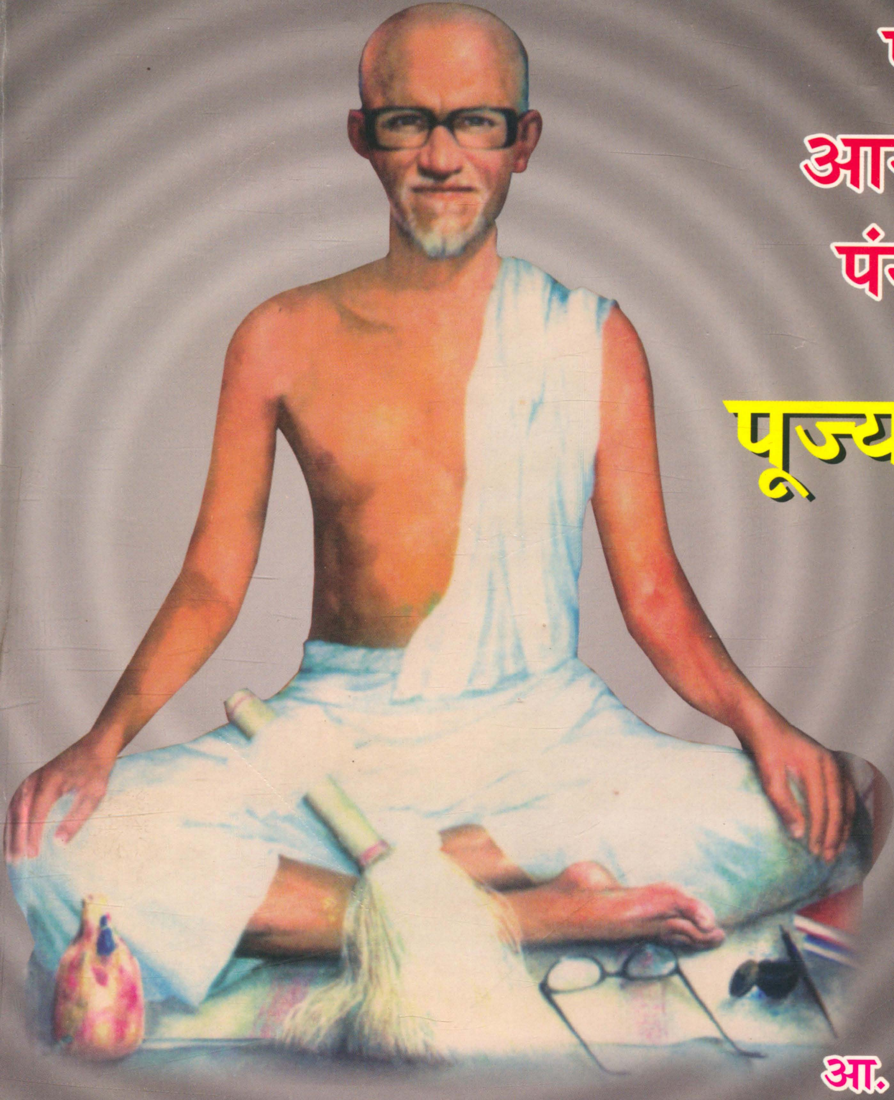

परमयोगी
आगम विशारद
पंन्यास-प्रवर

पूज्य गुरुदेवश्री

आ. श्री हेमचन्द्रसागरसूरिजी

सुविहित–शिरोमणि

परमयोगी

आगमविशारद

पंन्यासप्रवर

पूज्य गुरुदेव

श्री अभयसागरजी म.

के

अलौकिक

जीवन पट्ल पर

रोशनी बिखेरती

विरल

पुस्तक...

परमयोगी आगमविशारद पंन्यास प्रवर-

पूज्य गुरुदेवश्री

लेखक
आगमविशारद पं.प्र. गुरुदेव
श्री अभयसागरजी म. के कृपापात्र तथा
बंधु त्रिपुटी **पू. आ.दे. श्री अशोकसागरसूरिजी म.** के शिष्य
पू. आ. श्री हेमचन्द्रसागरसूरिजी म.

प्रकाशक
श्री आगमोद्धारक प्रतिष्ठान
अयोध्यापुरम् महातीर्थ, नवागाम ढाल, तालुकाः वल्लभीपुर, जिलाः भावनगर, (गुजरात)

प्राप्ति स्थान
मुंबई : **श्री वीरपाल सी. शाह**
विमल दर्शन अपार्टमेन्ट, पाँचवीं मंजिल
नौवीं खेतवाडी, मुंम्बई-४००००४
सूरत : **श्री शैलेषभाई आर. शाह**
रत्नत्रयी उपकरण भंडार, सुभाष चोक, खमणहाउसनी गली, गोपीपुरा, सूरत-३
अहमदाबाद : **श्री जशवंतभाई ऐस. शाह**
खीजडावालो वास, मीठाखली, एलीसब्रीज, अहमदाबाद

प्रति : १०००
मूल्य :

मुद्रक : प्रिन्ट विझन प्रा. लि.
फोन : २६४०५२००, २६४०३३२०

क्या होना था और क्या हो गया ?

वास्तविकता तो
यही है कि.....
इस समय के लिए तो
इस प्रकार तय किया था कि
पूज्य गुरुदेवश्री का
समस्त परिवार इस वर्ष
पालीताणा में चातुर्मास करे
तथा
पूज्य श्री के वात्सल्य व्योम से
प्राप्त आगम-वाचना की बरसती
रिमझिम वर्षा में सतत-स्नान होता ही रहे...
एवं पूज्यश्री के
इस निश्राकाल में
पूज्यश्री सेवा/भक्ति/समर्पण का
अप्रतिम आनन्द प्राप्त करें।

कानों ने जब से
इस निर्णय का नाद सुना है,
तब से ही हृदय पुलकित था,
मन रोमांचित था और
काया भी हर्षित थी
तब से ही उस घड़ी की उत्सुकताभर प्रतीक्षा थी...
लेकिन प्रतीक्षा के उस पाताल को भेद कर बाहर
आए ज्वालामुखी ने हताशा के अंगारे ही प्रज्वलित
किए और आनन्द की पुष्पवर्षा के समय हृदय को
विषादयुक्त अंगारों ने जला दिया।
पूज्यश्री की निश्रा प्राप्त करने के अवसर पर ही
पूज्यश्री की विरह कथा लिखने का
अवसादपूर्ण क्षण आ गया..
किस प्रकार का है यह दुर्भाग्य?

यह पुस्तक जो लिखी गई है वह पूज्यश्री का जीवन-चरित्र नहीं है...

इसमें है पूज्यश्री के विरह समुद्र पर निरन्तर स्पन्दित होने वाली स्मृति की तरंगें...

विरह की व्यथा के साथ ही सतत रूप से तरंगित स्मृतियों को यहां शब्ददेह प्राप्त हुई है।

हृदय-पटल पर फैली व्यथा की पर्तों को स्मृति-शस्त्र के द्वारा

उधेड़कर इस पुस्तक में लेने का प्रयास किया है... लिख रहा था, तब कुछ राहत महसूस हुई और

दिल को कुछ सूकुन मिला।

पूज्यश्री के समस्त जीवन को, उनके विराट व्यक्तित्व को यथावत् न्याय देने का

मुझ में क्या सामर्थ्य है? इसीलिए यह बता रहा हूँ कि यह कोई जीवन चरित्र नहीं है,

मेरे स्वयं के स्वार्थ की सिद्धि के लिए यह मात्र एक प्रयोग है, जिसके द्वारा मैं भारमुक्त

हो कर कुछ हल्कापन अनुभव कर सकूं।

फिर भी प्रस्तुत की गई अनुचित व अस्तित्वहीन सामग्री के लिए नतमस्तक।

मिच्छा मि दुक्कडम्

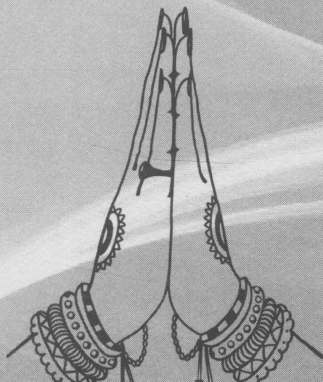

गुरुवर चरणरज

हेमचन्द्रसागर

जिन
परमदयालु
पूज्यश्री के द्वारा दिए
आशीर्वाद के प्रत्येक श्वासोच्छ्वास पर
हमारी इस संस्था के
प्राण स्पन्दित हो रहे हैं,
उन परम कृपावंत परमयोगी
आगमविशारद
पंन्यासप्रवर गुरुदेव
श्री अभयसागरजी म. की
इस संक्षिप्त जीवन-स्मृति को
प्रकाशित करने का यह अवसर
हमारे लिए एक अद्‌भुत तृप्ति प्रदान करनेवाला है।
इस मंगल मुहूर्त पर
हम उन सबका अभिनन्दन करते हैं,

जिनका इस प्रकाशन के सुप्रयास-सुसहयोग में योगक्षेम रहा है। लिख कर सामग्री देने वाले लेखक महोदय, आर्थिक सहयोग देनवाले दातागण, पुस्तक की साज-सज्जा के यशोभागी प्रकाशक-व्यवस्थापक-मुद्रक महोदय - श्री यज्ञेशभाई पंड्या, प्रिन्ट विझन आदि सबका हम अभिनन्दन करते हैं... आशा रखते हैं कि पुस्तक में प्रस्तुत सामग्री जब बड़े प्रकाशन की भूख निर्मित करेगी.. तब ही... इस प्रकाशन के प्रयास को हम सार्थक मानेंगे।

व्यवस्थापक

श्री आगमोद्धारक प्रतिष्ठान

स्थलः अयोध्यापुरम् महातीर्थ, नवागाम ढाल
तालुकाः वलभीपुर, जिला : भावनगर (गुजरात)

परमयोगी आगमविशारद पंन्यासप्रवर पूज्य गुरुदेवश्री का संक्षिप्त परिचय...

जन्मक्षेत्र	:	उनावा (मीरादातार), तालुकाः ऊंझा, जिलाः महेसाणा (गुजरात)
जन्मतिथि	:	सं. १९८१, ज्येष्ठ, कृष्ण पक्ष एकादशी
जन्मनाम	:	अमृतकुमार
पिता	:	मूलचन्दभाई खुशालदास (उपाध्याय श्री धर्मसागरजी म.)
माता	:	मणिबहन (साध्वी श्री सद्‌गुणाश्रीजी. म.)
भाई	:	मोतीलाल (मुनिराज श्री महोदयसागरजी म.)
बहन	:	सविताबहन (सा. श्री सुलसाश्रीजी म.)
दीक्षातिथि	:	सं. १९८८, मृगशीर्ष कृष्णपक्ष एकादशी
दीक्षास्थल	:	श्री शंखेश्वर महातीर्थ-दादा का मूल दरबार
दीक्षागुरु	:	उपाध्याय श्री धर्मसागरजी म.सा.
दीक्षादाता	:	आगमोद्धारक पू. आनन्दसागरसूरि म.
गणिपदतिथि	:	सं. २०२१, ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष एकादशी, कपड़वंज
पंन्यासपद	:	नरोडातीर्थ (अहमदाबाद). सं. २०२९, माघ शुक्ल पक्ष, नवमी
जीवनयात्रा विराम	:	सं. २०४३, कार्तिक कृष्ण पक्ष नवमी, ऊंझा, जिला-महेसाणा
शिक्षण	:	व्यवहारिक अभ्यास - मुनि जीवन में जैनागम शास्त्र व व्याकरण
धर्मशास्त्राभ्यास	:	भूगोल-खगोल, ध्यान, योग, वैदिक, आदि लगभग समस्त विषय
भाषाज्ञान	:	गुजराती-संस्कृत-प्राकृत-अर्धमागधी-हिन्दी-मराठी-अंग्रेजी-उर्दू आदि...
साहित्य	:	श्रमण जीवन-चर्चा दर्शक, आगम रहस्य
सृजन	:	भूगोल-खगोल से सम्बन्धित, स्वचिन्तन, परमात्म भक्ति, भटेवा पार्श्वनाथ स्मारक ग्रंथ, आगम ज्योतिर्धर के दो विशाल ग्रंथ तथा तत्वज्ञान, स्मारिका आदि २२५ पुस्तकों का लेखन तथा आगमज्योत (गुजराती) का १६ वर्षों तक सम्पादन !
उल्लेखनीय कार्य	:	आगम वाचना, नमस्कार महामंत्र प्रचार जंबूद्वीप मंदिर, नागेश्वर तीर्थोद्धार, मांडवगढ़ तीर्थ-व्यवस्था, संस्कृति-सुरक्षा।

आभार

इस पुस्तक के प्रकाशन में
सहभागी बने समस्त
गुरुभक्तों का करबद्ध आभार

- संघवी बाबुलालजी अचलदासजी चेन्नई, फर्म-साउथ इन्डिया ज्वेलरी...
  हस्ते पोपटलालजी सा.
- संघवी बाबुलालजी वीरचंदजी मेहता, चेन्नई, फर्म- महेन्द्र प्लास्टिक
- श्रीमान् नवलचंदजी सा. जावालवाले, चेन्नई
- घेवरचंदजी मम्माजी राका-उमेदाबाद

आगमोद्धारक प्रतिष्ठान
अयोध्यापुरम् महातीर्थ
नवागाम ढाळ, वलभीपुर

दो शब्द मेरे भी सुन लें...

यह बात मुझे मेरे वरिष्ठ गुरुबंधुओं ने कही...

अहमदाबाद की पंकज सोसाइटी में वि.सं. २०४४ में आयोजित श्रमण सम्मेलन के समय पू. पंन्यासप्रवर श्री चन्द्रशेखरविजयजी को हमारे गुरुदेव (तब पूज्य गणी श्री जिनचन्द्रसागरजी म. तथा पू. गणी श्री हेमचन्द्रसागरजी म.) जब लम्बी अवधि के बाद मिले, तब इन दोनों में से पू. पंन्यासजी म. कौन हैं? स्पष्ट रूप से पहचान नहीं सके, इसलिए उन्होंने यह पूछा...

"आप कौन? जिनचन्द्र या हेमचन्द्र?"

"हेमचन्द्रसाहब!"

"मुझे आपको शाबाशी देना है"

"किस लिए पूज्यवर!"

"पूज्य गुरुदेवश्री की पुस्तक आपने ही लिखी है?"

"हाँ जी!"

"बस, इसीलिए! बहुत सुन्दर पुस्तक लिखी है... यह पुस्तक जैसे ही मेरे हाथों में आई... एक ही बैठक में पूरा पढ़ गया... और मेरे प्रत्येक साधु को मैंने उसे पढ़ने के लिए दिया। वैसे तो वर्तमानकाल के किसी भी महापुरुष आदि के जीवन-चरित्र को पढ़ने के लिए मैं मेरे साधुओं को इंकार ही करता हूँ, लेकिन इस पुस्तक को तो मैंने उन्हें अनिवार्य रूप से पढ़ने के लिए कहा... कितना सुन्दर जीवन रहा है अभयसागरजी का?!"

मैंने उपरोक्त कथन जब से सुना है तब से ही इस ''पूज्य गुरुदेवश्री'' पुस्तक के प्रति मुझ में अनिर्वचनीय भाव उत्पन्न होने लगा... फिर तो मैंने कई बार इस पुस्तक को पढ़ा.... और पूज्य गुरुदेव की कृपा से ही इस पुस्तक का संस्कृत भाषा में श्लोकबद्ध रूप में भावानुवाद करने का सद्भाग्य भी मैं प्राप्त कर सका हूँ।

कितना सुन्दर योग?

पू. पंन्यासप्रवर गुरुदेव श्री अभयसागरजी म. सांसारिक पक्ष के रूप में हमारे परिवार के गुरुदेव और...

उनके प्रशिष्य और इस जीवनचरित्र के लेखक (पू.आ. दे. श्री हेमचन्द्रसागरसूरि म.) हैं मेरे गुरुदेव।

इस जीवनचरित्र को पढ़ते-पढ़ते मुझे कई बार ऐसा लगा कि इतने अहोभाव व आत्मीयभाव के साथ इसके लिखने वाले पूज्य गुरुदेव का पू. पंन्यासप्रवर गु. श्री अभयसागरजी म. के साथ निश्चित ही कोई विशिष्ट नाता या सम्बन्ध होना ही चाहिए... एक प्रशिष्य के रूप में तो सम्बन्ध है ही, लेकिन इससे भी अधिक कोई गहरा सम्बन्ध होना चाहिए।

और इसका सुराग मुझे एक पत्र के द्वारा मिल भी गया...

पूज्य पंन्यास गुरुदेवजी की बहन म. पूज्य साध्वी श्री सुलसाश्रीजी की शिष्या चुस्त संयमी पू. साध्वी श्री सुधर्माश्रीजी म. का वह पत्र था। पत्र लिखनेवाली वह पू. साध्वीजी अयोध्यापुरम् में लगभग एक माह रही और तब वह पूज्य गुरुदेव की वाचना से बहुत प्रभावित हुई। अयोध्यापुरम् से विहार कर अहमदाबाद की ओर जब वे पधारी उस दौरान का ही वह पत्र था। उसमें अन्य कई विवरण थे, लेकन अंतिम चार-पाँच पँक्तियों ने मुझे अन्दर तक झकझोर दिया। उसमें लिखा था कि पूज्य गुरुदेव पं. प्र. श्री अभयसागरजी म. के अक्षर वैसे नहीं थे कि उन्हें ठीक से पढ़ सकें, इसलिए कई बार अपने लिखे पत्रों की नकल तैयार करने के लिए वे हमें भेजते थे। हम नकल कर पत्र वापिस लौटा देते थे, उनमें से ही एक पत्र में लिखा था कि - मैं व हेमचन्द्रसागर पिछले जन्म में वैताढ़यगिरि पर विद्याधर थे... हम दोनों

ने दीक्षा ली थी। इसलिए आप तो पिछले जन्म से ही पूज्यश्री के साथी रहे हैं। इसलिए आपकी वाचना तो उत्तम ही होगी? इस के अतिरिक्त एक ओर पत्र मेरी नज़र में आया जो कि पंडितप्रवर श्री रतिभाई का है। रतिभाई पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्य विश्वसनीय-कृपापात्र एवं निकटतम व्यक्ति थे। ये दोनों पत्र सानुवाद यहाँ प्रस्तुत है।

इन पँक्तियों को पढ़ने पर मेरा अनुमान पूणर्तः सही सिद्ध हुआ। तब मुझे स्वयं को प्राप्त शिष्यत्व पर भी गौरव की अनुभूति हुई।

साथ ही पूज्य गुरुदेवश्री के अनन्यभक्त पंडित वर्य श्री रतिभाई चि. दोशी ने भी लिखित रूप में उपरोक्त मुद्दे का समर्थन किया.... इससे मेरी मान्यता अब पुष्ट हो गई।

दो जन्मों के सम्बन्धों की स्याही से लिखित यह जीवनगाथा मेरी तरह सबके लिए प्रेरणादायी रहे, बस यही है अभिलाषा....

गुरुचरण सेवक

तारकचन्द्र सागर

भाईका मूलपत्र

મહા સુદ ૧૩

પૂજ્યપાદ પ્રાતઃસ્મરણીય ૧૦૦૮ પૂ. આ. દેવશ્રી જિનચન્દ્રસાગરસૂરિજી મ.સા. પૂ. આ. દેવશ્રી હેમચન્દ્રસાગરસૂરિજી મ.સા. પૂ. આ. શ્રી રત્નશેખરસાગરસૂરિજી મ.સા. આદિ ઠાણાંની પવિત્ર સેવામાં....

અમદાવાદથી લિ: ચરણસેવક રતિલાલની કોટિશઃ વંદના અવધારશો

આપ સર્વ સુખશાતામાં હશોજી.

આપશ્રીનો પત્ર તથા સમાચાર મળ્યા જવાબ આપી શક્યો નથી તો માફ કરશોજી મને એમ હતું કે મહેસાણા રૂબરૂ મળવાનું થશે- એટલે જવાબ ~~આપેલ નહીં પણ ફરીથી~~ આપી દઈશ. પણ ફરીથી આપશ્રીનો પત્ર આવવાથી જવાબ લખી રહ્યો છું.

"આપશ્રી તથા પૂ. પ્ર. ગુરુવર્ય પં. પ્ર. શ્રી અભયસાગરજી મ.સા. વચ્ચેના સંબંધમાં હું ખાસ કંઈ જાણતો નથી. પણ ગુરુ મ. શ્રીના હસ્તાક્ષરમાં લખેલ એક પત્ર મારા વાંચવામાં આવેલ 'જેમાં આવા ભાવનું લખાણ હતું કે- "આપણે બંને (પૂ. પ્ર. ગુરુવર્યશ્રી તથા પૂ. હેમચંદ્રસાગરજી મ.સા.) પૂર્વ જન્મમાં વૈતાઢ્ય પર્વત ઉપર વિદ્યાધર હતા. સંયમ ગ્રહણ કરેલ - પણ આરાધનાની કચાશે આ જન્મ પ્રાપ્ત થયેલ અને ઋણાનુબંધે આ જન્મમાં પણ સંયોગ થયેલ છે."

આથી વધુ હું કંઈ જાણતો નથી. આપશ્રી તપાસ કરશો તો પૂ. ગુરુદેવશ્રીના હસ્તાક્ષરવાળા પત્રોમાં કદાચ એ કાગળ મળી જશે.

મારા યોગ્ય કાર્ય સેવા ફરમાવવા વિનંતિ...

સાદર કોટિકોટિ
ભાવભરી
ભૂરિભૂરિ
વંદનાવલિ

अनुवादित पत्र

महासुद-१३

पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय १००८ पू. आ. देवश्री जिनचन्द्रसागर सूरिजी म.सा., पू. आ. देव श्री हेमचन्द्र सागर सूरिजी म.सा., पू. आ. ~~देव~~ श्री रत्नशेखरसागरसूरिजी म.सा. आदि ठाणा की पवित्र सेवा में..

अहमदावाद से लि० चरण सेवक रतिलाल की कोटिशः वंदना स्वीकारनाजी!

आप सर्व सुखशाता में होंगेजी!

आप श्री ~~के~~ के पत्र तथा समाचार मिले. जबाब न दे सका अतः क्षमा करनाजी! मुझे ऐसा लगा था कि मेहसाणा रूबरू मिलना होगा इसलिए जबाब नहीं दिया परंतु फिर से दे दूंगा लेकिन फिर से आप श्री का पत्र आया इसलिए जबाब लिख रहा हूँ।

"आप श्री तथा पू. गुरुवर्य पं. प्र. श्री अभयसागरजी म.सा. के बीच के संबंध में मैं खास कुछ भी नहीं जानता. परंतु गुरु म. श्री के हस्ताक्षर में लिखा एक पत्र मेरे पढ़ने में आया था जिसमें ऐसे भाव में लिखा था कि "हम दोनों (पू. प्र. गुरुवर्य श्री तथा पू. हेमचन्द्रसागर जी म. सा.) पूर्व जन्म में वैताढ्य पर्वत ऊपर विद्याधर थे. संयम ग्रहण किया था परंतु आराधना की कमी से इस जन्म को प्राप्त हुए और ऋणानुबंध से इस जन्म में भी संयोग हुआ है."

इससे ज्यादा मैं कुछ जानता नहीं. आप श्री तलाश करोगे तो पू. गुरुदेव श्री के हस्ताक्षरवाले पत्रों में शायद वह पत्र मिल जाएगा.

मेरे योग्य कार्य सेवा फरमाने की विनंति.

सादर कोटि-कोटि
भाव भरी भूरि भूरि
वंदनावली

साध्वी सुधर्माश्रीजी का मूलपत्र

મહાસુદ-૧૦ લીંબડી

પરમ પુજ્ય શાસન પ્રભાવક વાત્સલ્ય વારિધિ પુ. જીનચંદ્રસાગર સૂરીશ્વરજી મ.સા. તથા પુજ્ય હેમચંદ્ર સાગરજી મ.સા. નાના સર્વે મ.સા.ને સુગુણા શ્રી સુધર્માશ્રી આદિ ઠાણા-પાંચની કોટીશઃ વંદનાવલી સહ આપશ્રી શાતામાં હશોજી આપ પુજ્યોની કૃપાથી તેમજ છીએજી

આપશ્રીની છ-સાત દિવસની વાચનામાં ઘણો રસ પડ્યો વાચના જીવનભર સ્મરણીય બનશેજી રહેવાનું મન થઈ જાય પણ આ વખતે ગુરુદેવશ્રી મનેપણ જાણે આ વરસ મારા માટે ભારે હોય તેવું લાગે છેજી તેથી હવે જેમ બને તેમ જલ્દી ગુરુમ.ની નિશ્રામાં પાટણ પહોંચવા ભાવના છેજી આગમયશાશ્રીજીને ઠીક નહોવાથી ભાવનગર બતાવવા જવું હતું તોપણ ન જતાં પાટણ તરફજ વિહાર છેજી પુજ્ય પંન્યાસજી મ.સા. (પુ. અભયસાગરજી મ.સા.)ના ઉપકારેજ અમારા જેવા સંયમને પામ્યા છીએજી તેઓશ્રીને જે જે અનુભવો સ્વપ્નાઓ આવતા તે પુ. સુલસાશ્રીજી મ. ઉપર જેવા તેવા અક્ષરથી લખેલા મને સારા અક્ષરથી ઉતારો કરાવતા તેમાં એકમાં એવું લખાણ હતું "હું અને હેમચંદ્રસાગરજી ગતભવે વૈતાઢ્ય પર્વત ઉપર વિદ્યાધર રૂપે હતા અને બંનેએ દીક્ષા લીધેલી આપશ્રી કેવા ભાગ્યશાળી કે આ ભવમાં પણ એજ ગુરુમ.ની પ્રાપ્તિ થઈ. અમને પણ એજ ગુરુભગવંતે સંયમ સુધી

લાવ્યા છેજી ગત ભવોના ઋણાનુબંધ કામ કરે છેજી તેથી આવા ગુરુભગવંત આપશ્રીને પણ મળ્યા તો હવે અમારા જેવાનો ઉદ્ધાર કરવા નમ્ર વિનંતી છેજી સંયમમાં આગળ વધારવા કૃપાદૃષ્ટિ રાખવા કૃપા અમારા લાયક કાર્યસેવા ફરમાવશોજી અમો પાટણ તંબોળીવાડે પુજ્ય ગુરુમ. સુલસાશ્રીજી મ.ની સાથે છીએજી ટપાલનો જવાબ આપવા કૃપા- સુધર્માશ્રીજી આદિ -

अनुवादित पत्र

लींबडी

महासुद-१०

परम पूज्य शासन प्रभावक वात्सल्य वारिधि पू. जिनचन्द्रसागर सूरीश्वरजी म.सा. तथा पूज्य हेमचन्द्रसागरजी म.सा., छोटे सभी म.सा. को सुगुणा श्री सुधर्माश्री आदि ठाणा पाँच की कोटिशः वंदनावली सह आप श्री शाता में होंगेजी। आप पूज्यों की कृपा से वैसे ही हैं जी।

आपश्री की छ-सात दिन की वाचना मे बहुत रस आया. वाचना जीवन भर स्मरणीय बनेगीजी! रहेने का मन हो जाए परंतु इस बार गुरुदेवश्री मुझे भी मानो यह वर्ष मेरे लिए भारी हो ऐसा लगता है जी! इसीलिए अब जैसे हो वैसे जल्दी गुरु म. की निश्रा में पाटण पहुँचने की भावना है जी!

आगमयशाश्रीजी को ठीक न होने से भावनगर बताने जाना था तो भी न जाकर, पाटण तरफ ही विहार है जी।

पूज्य पंन्यासजी म.सा. (पू. अभयसागरजी म.सा.) के उपकार से ही हमारे जैसे संयम को प्राप्त हुए हैं जी, उनको जो जो अनुभव, स्वप्न, आते थे वे पू. सुलसाश्रीजी म. को जैसे-तैसे अक्षर से लिखे थे. मुझे सुंदर अक्षर से कॉपी करवाते थे उनमें से एक में ऐसा लिखा था कि "मैं और हेमचन्द्रसागरजी गत भव में वैताढ्य पर्वत के ऊपर विद्याधर के रूप में थे और दोनों ने दीक्षा ली थी, आप श्री कैसे भाग्यशाली कि इस भव में भी वे ही गुरु म. की प्राप्ति हुई। हमें भी वे ही गुरु भगवंत संयम तक लाए हैं जी। गत भवों के ऋणानुबंध काम करते हैं जी, इसीलिए ऐसे गुरु भगवंत आपश्री को भी मिले हैं तो अब हमारे जैसे का उद्धार करने की नम्र विनंति है जी। संयम में आगे बढ़ाने कृपा दृष्टि रखने कृपा... हमारे लायक कार्य सेवा फरमावे जी! हम पाटण तंबोलीवाड़े में पूज्य गुरु म. सुलसाश्रीजी म.सा. के साथ हैं जी।

पत्र का जवाब देने की कृपा — सुधर्माश्रीजी आदि.

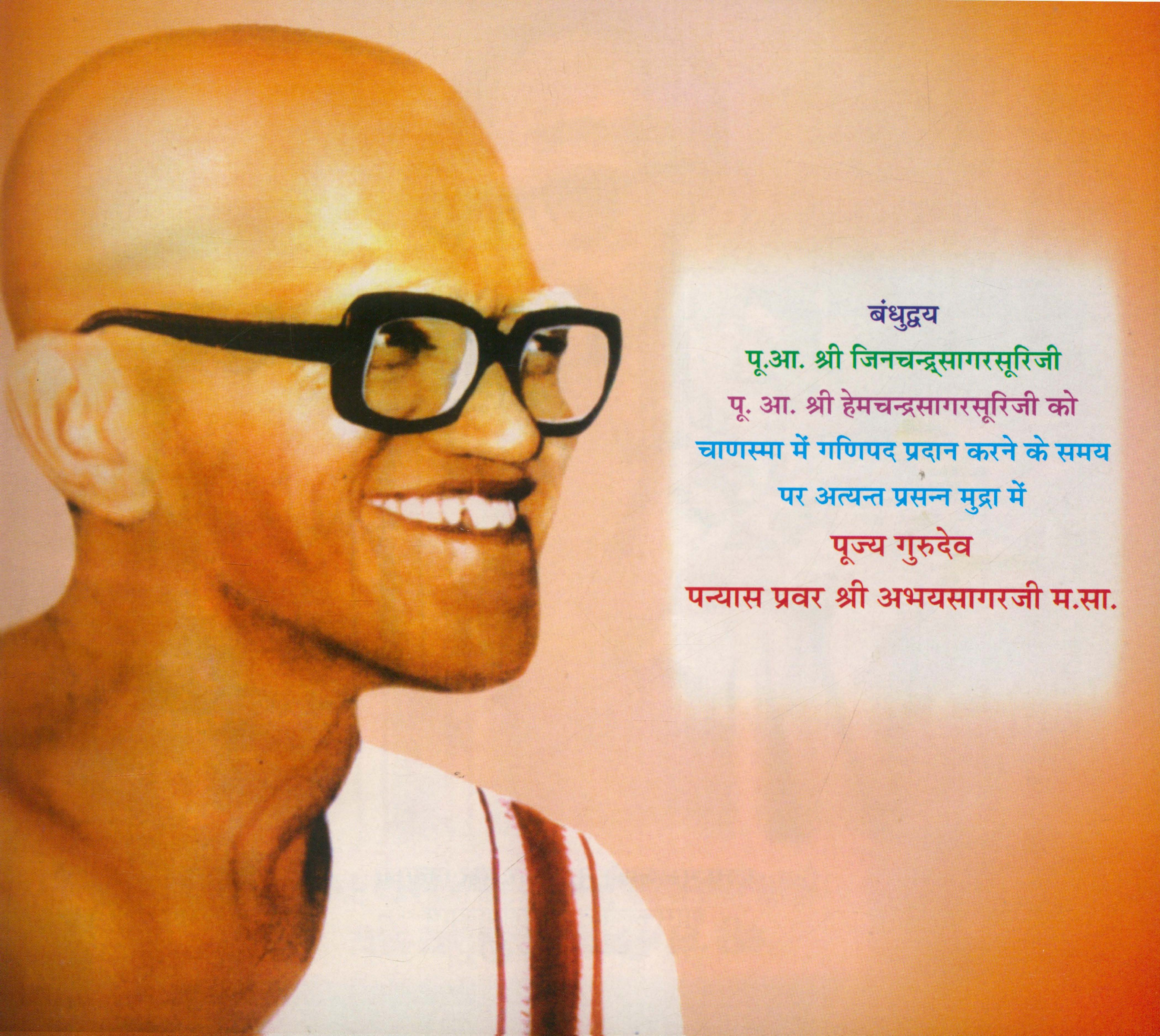

बंधुद्वय
पू.आ. श्री जिनचन्द्रसागरसूरिजी
पू. आ. श्री हेमचन्द्रसागरसूरिजी को
चाणस्मा में गणिपद प्रदान करने के समय
पर अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में
पूज्य गुरुदेव
पन्यास प्रवर श्री अभयसागरजी म.सा.

पूज्य गुरुदेवश्री के संसार पक्षे पिताश्री
शासनज्योतिर्धर महोपाध्याय
श्री धर्मसागरजी म.सा.

पूज्य गुरुदेवश्री की सांसारिक रूप से माता साध्वी
श्री सद्गुणाश्रीजी म.सा.

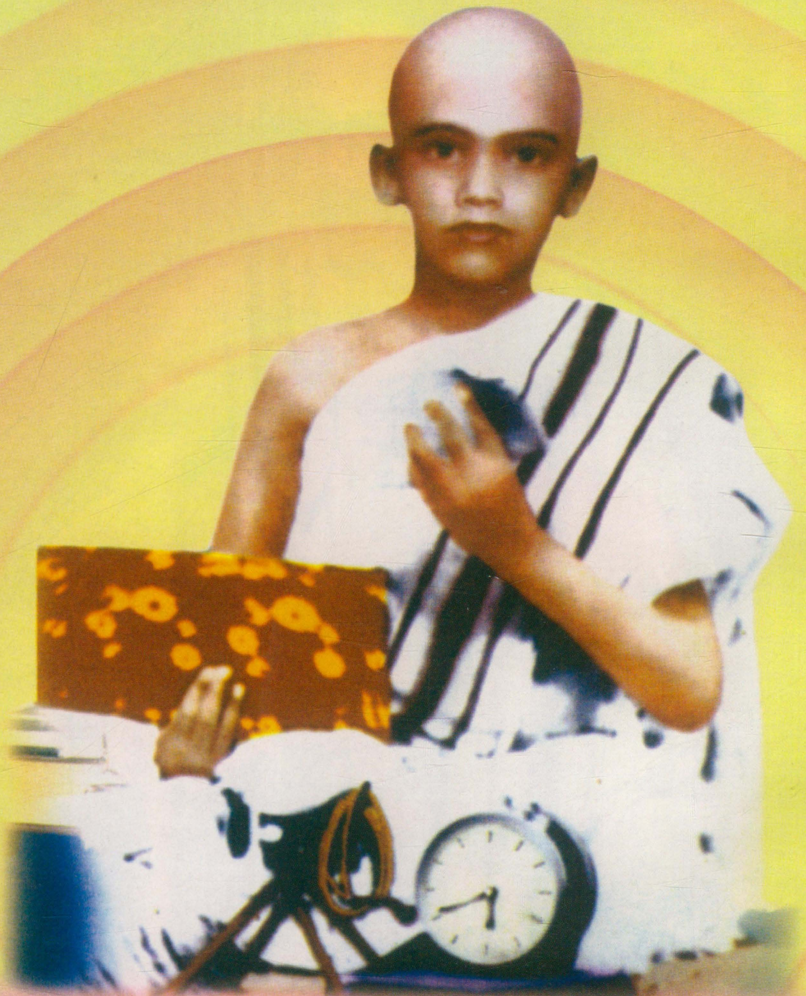

पू. पं. श्री अभयसागरजी म. के, अग्रज प्रखरज्ञानी व
प्रखरवक्ता पूज्य मुनिराज श्री महोदयसागरजी म. बालउम्र में

पूज्य गुरुदेवश्री की सांसारिक रूप से छोटी बहन म.

साध्वी श्री सुलसाश्रीजी. म.

दीक्षा स्वीकार की उसके अगले दिन की तस्वीर

अमृतकुमार मूलचन्द शाह उम्र ६.५ वर्ष

साहित्य व्याकरण की परीक्षा के
समय सोलह वर्ष की उम्र में पूज्य गुरुदेवश्री

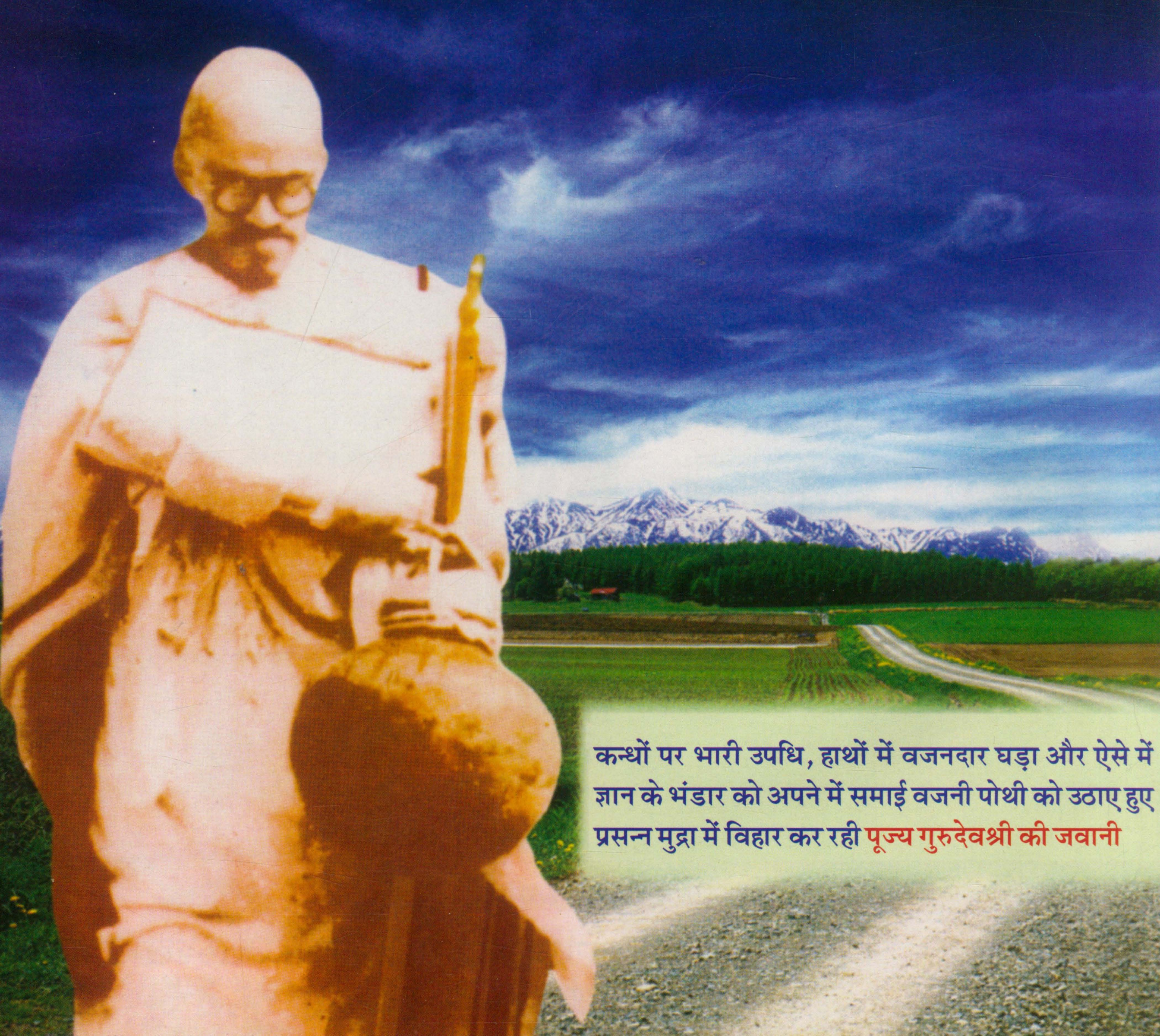

कन्धों पर भारी उपधि, हाथों में वजनदार घड़ा और ऐसे में ज्ञान के भंडार को अपने में समाई वजनी पोथी को उठाए हुए प्रसन्न मुद्रा में विहार कर रही पूज्य गुरुदेवश्री की जवानी

शास्त्रों के वाचन और चिन्तन में निमग्न

पूज्य गुरुदेवश्री

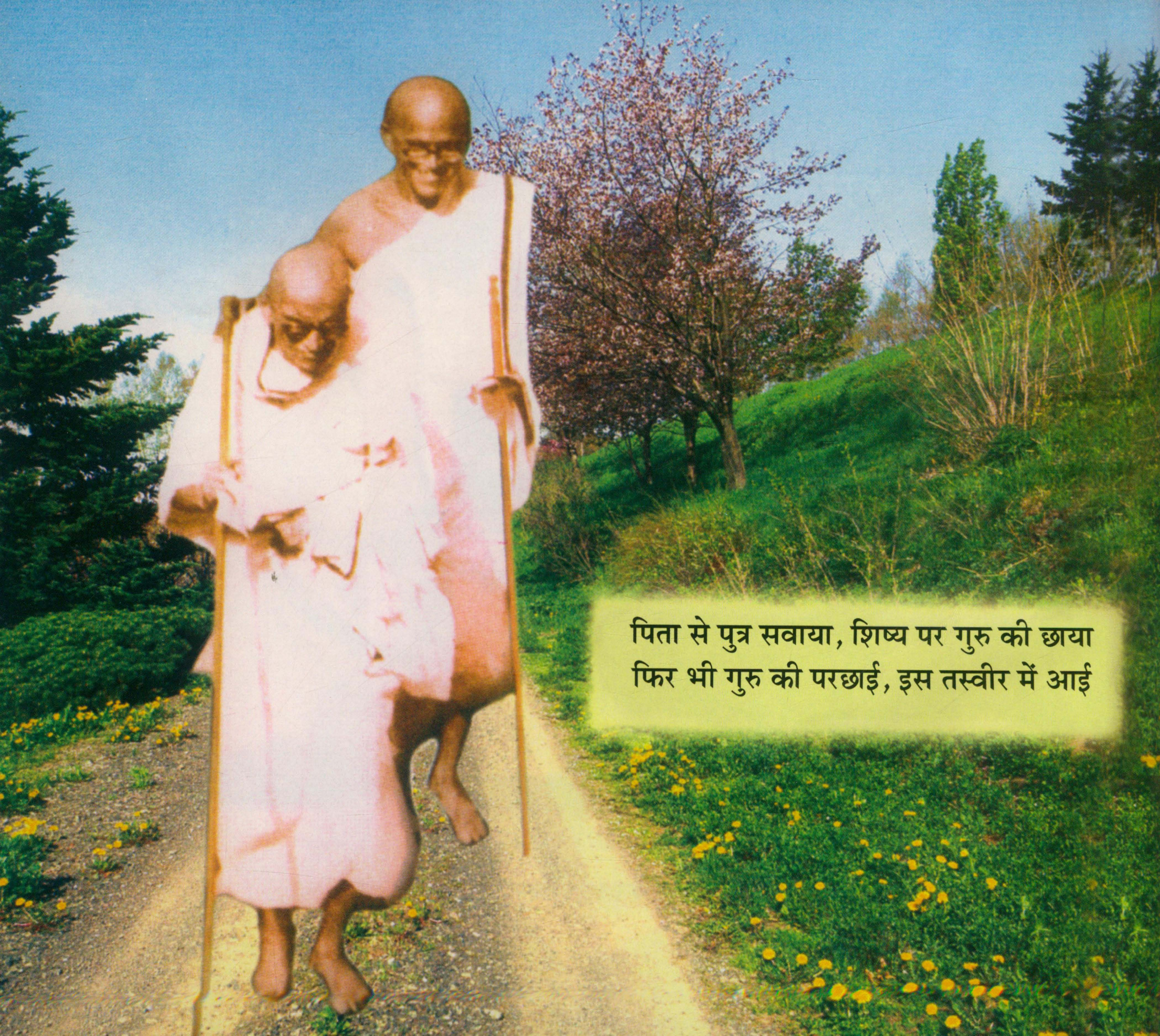

पिता से पुत्र सवाया, शिष्य पर गुरु की छाया
फिर भी गुरु की परछाई, इस तस्वीर में आई

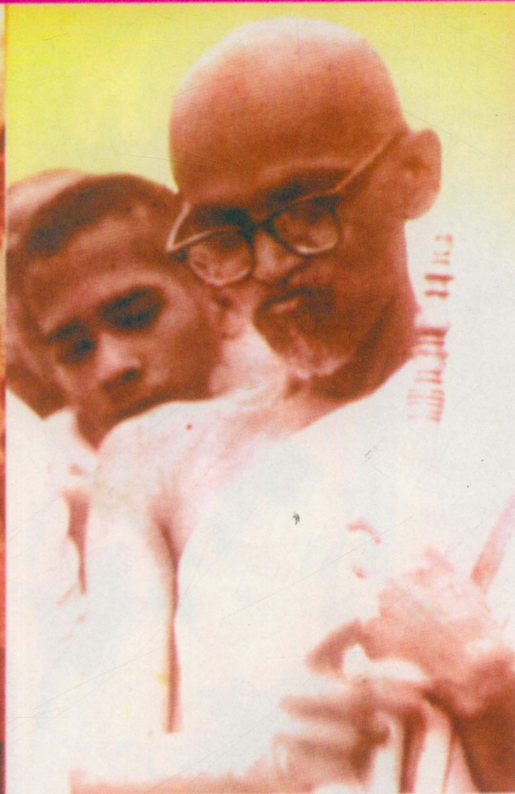

चाणस्मा सार्धशताब्दी महोत्सव के समय आगम प्रदर्शनी के बारे में समझाते हुए पूज्य गुरुदेवश्री ... साथ में हैं मुनि जिनचन्द्रसागरजी पूनमचन्द वाडीलाल (पूर्णानन्दसागरजी), श्री जीवतलाल प्रतापशी, बाबूभाई ऐरोवाला, लालभाई एल. परीख आदि अग्रणी।

अशोकभाई सूरजमल (नवा वाड़ज, अहमदाबाद) के
बंगले पर हृदयाघात की स्थिति में प्रभुदर्शन में लीन
पूज्य गुरुदेवश्री

दूर क्षितिज में
अपने स्वप्नों को निहारते हुए
पूज्य गुरुदेवश्री

पिता पुत्र की जोड़ी बन गई, बाद में गुरु-शिष्य की जोड़ी
एक ने बहाई शासन की धुरा, दूसरे न रखी आगम की झोली

पू. गुरुदेवश्री की आज्ञा को शिरोधार्य करते मुनि (वर्तमान में आचार्य)

श्री हेमचन्द्रसागरजी म.

जंबूद्वीप मन्दिर के ऐतिहासिक शिलान्यास के समय मंदिर के अग्रणियों के साथ पू. गुरुदेवश्री ।

पूज्य गुरुदेवश्री से कृपापात्रता प्राप्त करते हुए बंधुद्वय

पू. आ. श्री जिनचन्द्रसागरसूरि म.

पू. आ. श्री हेमचन्द्रसागरसूरि म.

पलने में झूलनेवाला और घुटनों के बल घूमनेवाला नन्हा अमृत जब खिलौनों की दुनिया में खोया हुआ था, तब ही पिता मूलचन्दभाई का रुझान धर्म के सन्मुख होने लगा था।

लेकिन इसके पहले की स्थिति तो कुछ अलग ही प्रकार की थी। देश की आजादी के लिए गांधीजी द्वारा चलाए जा रहे आन्दोलन में ये मूलचन्दभाई नेतृत्वशक्ति का परिचय देते हुए उस दौरान उल्लेखनीय रूप से अपना योगदान दे रहे थे।

आजादी की आस....

आजादी के आन्दोलन की उनमें उस समय इतनी खुमारी छा गई थी कि लगता था मानों जन्मघूंटी के रूप में मिले धर्म के संस्कारों और धर्म की प्रवृतियों को तो तिलांजलि ही दे दी हो।

मान्यता ऐसी बन गई थी कि– ''जमाना बदल गया है, समय की भी यही माँग है। समाज के कल्याण के लिए तो इस समय साधुओं को भी बाहर निकल कर देश की आज़ादी के लिए अपनी बुलन्द आवाज को हर तरफ गुंजाना चाहिए... । प्रजा में आदर्श स्थापित करने के लिए साधुओं को भी अन्य वस्त्रों का त्याग कर खादी परिधानों को अपना लेना चाहिए।''

इस प्रकार मूलचन्दभाई आज़ादी से सम्बन्धित क्रांतिकारी विचारों में आमूलचूल रूप से रंगे जा चूके थे....

लेकिन एक दिन स्थिति में बदलाव आया।

मेट्रिक तक अभ्यास करने के पश्चात् मूलचन्दभाई व्यापार के क्षेत्र से जुड़ गए ..... और उसमें विकास के लिए मुम्बई चले गए।

व्यापार के कारण उनके सम्बन्ध श्री चिमनभाई पटवा (पू. आ. श्री चन्द्रसागरसूरि म.) और श्री भगवानभाई (पू.पं. श्री भद्रंकरविजय म.) जैसे कल्याण मित्रों के साथ मजबूत हुए।

इस में भी आगे बढ़ कर उन्हें पू. आगमोद्धारक श्री आनन्दसागरसूरिश्वरजी म. जैसे सद्गुरु भगवंतों

का साथ प्राप्त हुआ।

अंतर्मन को आंदोलित कर देने वाली उनकी वाणी और-प्रचुर चर्चाओं के दौर से मूलचन्दभाई के जीवन में चमत्कारों का सर्जन हुआ।

सबसे सवाई आत्म-आज़ादी

प्रेरणा के प्रतिबिम्ब में उन्हें यह स्पष्ट हो चुका था कि देश की आजादी से कहीं अधिक महत्व आत्म-आज़ादी का है।

और..... बस.....

शक्ति के इस तेज्ज प्रवाह में अब एक निर्णायक मोड़ आया। अपनी आत्म आजादी प्राप्त करने के लिए धर्मक्रियाओं के प्रति उनमें रुचि जागृत हुई और फिर धर्म के साथ जीवन के सम्बन्ध तानेबाने की तरह उलझते चले गए।

यह सब मात्र समझने तक सीमित नहीं था। इस समझ के साथ ही सक्रियता का सहयोग लेकर तुरन्त ही उन्हें अपने जीवन की सम्पूर्ण सफलता विरक्ति के मार्ग पर ही नजर आने लगी।

निर्णय कर लिया गया कि अब शीघ्र ही संसार को छोड़ कर संयम को स्वीकार करना है।

परन्तु निर्णय के इस नाद के साथ ही प्रतिनाद की आवाज भी उन्हें सुनाई देने लगी।

''इस समय मैं अकेला नहीं हूँ। मेरे परिवार में पाँच सदस्य हैं। मुझे सिर्फ मेरे कल्याण से ही सरोकार नहीं रखना है, बल्कि मुझे जो यह परिवार मिला है, इसकी उचित देखभाल और विकास की जिम्मेदारी भी मुझ पर है।

आत्मकल्याण क्यों मेरे अकेले के लिए ही करूँ? क्यों नहीं परिवार के साथ ही संसार का परित्याग करूँ?

यदि सांसारिक जीवन साथ रह कर जी रहे हैं, तो संयमित जीवन भी साथ ही जिएंगे।

फिर तो और भी सुन्दर... इसके द्वारा तो फिर पुत्र, पौत्र

की चिरकालीन परम्परा का भी अंत हो जायेगा!

दुनिया की भूल-भुलैया...

और फिर मूलचन्दभाई अपने संकल्प की डगर पर आगे चल पड़े...

ऐसे वक्त पर धर्मपत्नी मणिबहन ने अपनी उदात्त भावना प्रकट की। हर निर्णय के समय सदैव साथ देने वाली मणिबहन भला इस मामले में कैसे इंकार करती?

इससे मूलचन्दभाई का उत्साह और बढ़ गया।

अपने इस संकल्पित मार्ग के द्वार को खोलने के लिए सर्वप्रथम उन्होंने अपने प्रथम पुत्ररत्न मोतीचन्द्र को प्रेरणामय अमृत पिला कर तैयार किया और नौ वर्ष की छोटी-सी उम्र में ही पूज्य आगमोद्धारकश्री की आज्ञानुसार पू. आ. श्री मेघसूरि म. के करकमलों द्वारा विद्याशाला (अहमदाबाद) में दीक्षा कराई। वह शुभ दिन था, विक्रम संवत् १९८५ आषाढ़ शुक्लपक्ष प्रतिपदा।

बालक मोती, बाद में बाल मुनि महोदयसागरजी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

वैरागी के रूप में अपने पुत्ररत्न को देख कर मूलचंदभाई का हृदय आनन्द से ओतप्रोत हो गया। अपने संजोए हुए स्वप्न को इस प्रकार साकार होते देख उनकी आंखों में प्रसन्नता के आँसू चमकने लगे।

अपने परिवार से सघन रूप में जुड़े संयम के द्वार अब इस प्रकार खुले...

लेकिन अब मूलचन्दभाई की संयम के प्रति अभीप्सा और बढ़... गई थी।

आत्मध्वनि

मणिबहन को रोज ही वे अब अपनी उत्कंठा बताने लगे... एक दिन उन्होंने कहा... ''अब तो इस संसार में एक पल बिताना भी असहनीय लग रहा है। ऐसा लगता है कि बस अभी ही चारित्र ले लूँ। लेकिन फिर इस नटखट अमृत और सविता का क्या होगा? अभी तो ये बहुत ही छोटे हैं। दीक्षायोग्य उम्र होने में तो

तीन–चार वर्ष की देरी है... इतनी लम्बी अवधि तक मैं इस संसार में किस प्रकार रह सकता हूँ? यह अत्यधिक चिन्ताजनक है।''

''तो फिर आपकी इच्छा क्या है?'' मणिबहन ने फिर अपनी ओर से ही पूछा...

''मुझे ऐसा लगता है कि यदि आप इन दोनों बालकों का ठीक ढंग से पालन कर, उचित उम्र में यदि इन दोनों बच्चों को दीक्षा दिलाने की भावना दर्शाती हों तो आपके भरोसे मैं इस संसार का त्याग कर अपने आत्मकल्याण मार्ग पर आगे बढ़ना प्रारम्भ कर सकता हूँ?''

मूलचन्दभाई की यह बात सुन कर मणिबहन कुछ क्षणों के लिए तो विचारमग्न हो गई व पतिदेव से वियोग के विचार मात्र से ही अत्यंन्त व्यथित हो गई और तब नेत्रों से कुछ आँसू भी टपक पड़े...

लेकिन वे सुशील व विवेकशील थीं इसलिए अपने मन को कठोर कर साड़ी के पल्लू से उन आँसुओं को पोंछ लिया और विगलित हो कर लेकिन निश्चयभरी आवाज में पतिदेव को इसका वचन दे दिया।

''आप तो विदाई लें। इस कटु और जहरीले संसार में तो मेरा मन भी नहीं लगता है, आप प्रयाण करेंगे तो मुझे भी प्रेरणा मिलेगी और उस प्रेरणा के सहारे दोनों बच्चों को लेकर मैं भी आपके पीछे–पीछे आ रही हूँ।''

इसके बाद संवत् १९८६, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष एकादशी के दिन जामनगर में पूज्य आगमोद्धारकश्री के करकमलों से मूलचन्दभाई दीक्षित हुए और वे पूज्य मुनिराज श्री चन्द्रसागरजी म. के शिष्य के रूप में मुनि श्री धर्मसागरजी के नाम से घोषित किए गए।

इसके पश्चात् संवत् १९८६ में ही फाल्गुन शुक्लपक्ष दशमी के दिन अपने पुत्र मुनि श्री महोदयसागरजी की स्वयं के साथ ही बड़ी दीक्षा हुई और दोनों पिता–पुत्र व गुरु–शिष्य के रूप में प्रसिद्ध

हुए।

गुरु–शिष्य की इस जोड़ी ने संयम का अपना लक्ष्य निर्धारित किया व उसके अनुरूप यह आराधना के सर्वोच्च शिखर की ओर आगे बढ़ने लगी।

इस ओर मणिबहन अपने पुत्र अमृत को बार–बार उसकी बाल–भाषा में प्रेरणा देती थीं और पिता व मुनि भाई के साथ बार–बार संपर्क भी कराती थी...

यद्यपि यह अमृत कम उम्र में भी बहुत शरारती व नटखट था, लेकिन पिछले जन्मों की समृद्ध पूँजी ले कर ही इस दुनिया में उसने पदार्पण किया था। इसलिए उसे अन्य दूसरी वस्तुओं में उतनी रुचि नहीं थी, जितनी चारित्र के उपकरणों के प्रति थी।

वह चारित्र के उपकरणों और साधनों को जैसे ही देखता कि वह खिलौनों को एक ओर रख कर उनके लिए दौड़ पड़ता।

साधुओं–मुनियों की विविध क्रियाओं को वह जब–तब तल्लीन हो कर देखता और अपनी माँ के पास आकर उन क्रियाओं की नकल स्वयं भी करने लगता...

अमृत के अमीबिन्दु

अमृत ने जब मणिबहन को उबला हुआ पानी पीता हुआ देखा तो उसने कहा– "माँ ! मैं भी अब उबला हुआ पानी ही पियूंगा। कच्चा पानी पीकर मुझे नर्क में नहीं जाना है।"

अपनी तोतली और मधुर,भाषा में माँ को जब तब कहता रहता– "माँ, मैं तो हथ्थी (हाथी) पर बैठ कर ही दीक्षा लेने वाला हूँ....! क्यों माँ मुझे दीक्षा कब मिलेगी?"

जिसका अवतरण ही महापुरुष बनने के लिए हुआ हो, उस अमृत के इन वाक्यों में न जाने कौन से शुभ संकेत छुपे होंगे...

उस कल्पना की बदली ही मणिबहन को आनन्द से भिगो देती थी।

समय की सरिता बहती हुई संवत् १९८८ की सीमा में प्रवेश कर चुकी थी।

पौष की दशमी के वे उत्सव के दिन थे। सौभाग्यशाली धाम शंखेश्वर था। हजारों यात्रियों का वहाँ जमघट लगा हुआ था।

पूज्य आगमोद्धारकश्री अपने विशाल परिवार के साथ वहाँ विराजमान थे। ...... आराधना की अविरत वर्षा वहाँ हो रही थी।

उसी समय मणिबहन भी अपने दोनों संतानों के साथ अठ्ठम आराधना के लिए वहाँ पहुँच गई। लाड़ली सविता को अपने साथ रखकर मणिबहन अत्यन्त भावविभोर होकर आराधना करती और अमृत को उपाश्रय में ही आजाद छोड़ देती। अमृत उपाश्रय को ही अपना घर समझकर वहीं खेलता रहता और बाद में सो जाता।

कभी इस साधु के साथ तो कभी उस साधु के साथ वह घूमता.. बैठता.... और अपनी प्यारी तुतलाती भाषा में नवकार बोलता और उनकी बातों को दोहराता।

लेकिन एकदिन अचानक यह बालक बड़े महाराजश्री के पास पहुँच गया और कहने लगा

''ओ बड़े मा, राज... मुझे दिच्छा लेनी ... दे दो ना!''

बालक अमृत की बातें सुन कर पूज्यश्री बच्चे की ओर आकर्षित हुए। उस सुन्दर, सलोने व सुशील बालक की ओर एक नजर निहारा फिर उसका हाथ पकड़कर उसे अपनी ओर खींचा।

बालक बिना किसी हिचक के पूज्यश्री के पास और सीधे उनकी गोद में ही बैठ गया... पूज्यश्री की दाढ़ी पर अपना कोमल हाथ फिराता रहा और फिर बोला– ''मा' राज, मुझे दीक्षा दे दो ना.. मुझे भी ऐसा ओघा चाहिए... मुझे ओघा लेकर नाचना है... हे मा' राज! क्या मैं दीक्षा नहीं ले सकता?''

जवाब में बालक की दाढ़ी हाथ में लेकर

पूज्यश्री बताने लगे...

"बेटा ! क्यों नहीं ले सकते हो ? जरूर ले सकते हो। वे वज्रस्वामी और हेमचन्द्राचार्य तो तुम से भी छोटे थे। जब उन्होंने दीक्षा ले ली, तो तुम क्यों नहीं ले सकते ? लेकिन क्या तुम्हें मालूम है ?"

"क्या ?"

"दीक्षा लेने के बाद तुम गाड़ी में नहीं बैठ सकते... जब कहीं भी जाना हो तो नंगे पैर ही चलना होगा और तुम्हारे इन सब बालों को खींचकर तोड़ना होगा... बोलो यह करोगे ?"

"आप सब भी यह करते हैं ?"

"हाँ, हम सब भी !"

"तो... ठीक है, मैं भी करूँगा... आप करते हैं तो फिर मैं क्यों न करुँ? मैं भी करुँगा, अब तो देंगे न आप दीक्षा?" पूज्यश्री ने बालक को कसौटी पर तौल ही लिया.. और कहा...

"जाओ, तुम्हारे पिता मा'राज को बुला लाओ !"

और अमृत दौड़ता हुआ पूज्य मुनि धर्मसागरजी के पास गया और उन्हें पकड़ कर पूज्यश्री के पास ले आया... पूज्यश्री ने धर्मसागरजी को कहा–

"यह बालक क्या कह रहा है ? कब से दीक्षा–दीक्षा कह रहा है और है भी यह अत्यन्त ही सुशील... तो इस बारे में तुम्हारा व इसकी माँ का क्या विचार है?"

अमृत को सामने देखकर धर्मसागरजी कुछ मुस्कराए और बोले– "साहबजी ! मैंने तो इस निश्चय के साथ ही दीक्षा ली है कि अपने पूरे परिवार को मैं इस राह पर प्रेरित करुँगा। इसके लिए इसकी माता ने भी अपनी सहमति दे दी है, इसलिए इसे दीक्षा तो देना ही है, लेकिन अभी इसकी उम्र...?"

"क्यों कितनी है ?"

"अभी तो साढे छः वर्ष की ही है।"

"तब फिर आपत्ति क्या है? दीक्षा देने में कौन सी कठिनाई है?"

"साहबजी! मुझे तो कुछ भी कठिनाई नहीं है। यदि शास्त्र आज्ञा और आपकी इच्छा हो तो मेरी तो इसमें सहमति है ही.. बुलाओ इसकी मां को और तय कर लो.....

मणिबहन आई.... विचार-विमर्श हुआ। अपने दिल के टुकड़े के समान एकमात्र मासूम पुत्र को दीक्षा की बात पर प्रारम्भ में तो वे कुछ बोल ही नहीं सकी और न ही लाख कोशिश करने पर अपने बहते हुए आँसुओं को रोक पाई। आँखों से टपकते आँसुओं को अपने ही हाथों व पल्लू से पोंछती रही।

लेकिन पू. आगमोद्धारक की प्रेरणा एवं मुनिश्री धर्मसागरजी के समझाने से मणिबहन ने सहमति दे दी और यह तय किया की शंखेश्वर दादा की दीक्षातिथि ही अमृत की भी दीक्षातिथि होगी।

अब बात कुछ फैलने लगी, इसलिए बाल दीक्षा के विरोध का उग्र आक्रोश उमड़ने लगा। लेकिन सिंह के समान सीने वाले पूज्य आगमोद्धारक भला इस मुद्दे को कहाँ महत्व देने वाले थे?

फिर तैयारी हुई और पहुँचे दादा शंखेश्वर के दरबार में।

तब ऐसा लगा जैसे संसार सागर को पार करने वाले दो जहाजों का मिलन हो रहा हो।

अमृत का अरुणोदयः

जिनपडिमा... दादा शंखेश्वर की

जिन आगम पूज्य आगमोद्धारकश्री स्वयं

पूज्यश्री के साथ पूज्य मुनि चन्द्रसागरजी म... पूज्य श्री धर्मसागरजी म., बालमुनि पू. महोदयसागरजी म. तथा कुछ अन्य मुनिराज... कुछ साध्वी महाराज, कुछ श्रावक व मणिबहन के साथ कुछ श्राविकाएँ आदि...

चतुर्विध-संघ की उपस्थिति में दीक्षा-विधि

आरम्भ हुई।

अमृत की खुशी का तो तब कोई पार ही नहीं था। अमृत पुलकित हो कर उत्साहपूर्वक सारी क्रियाएँ करता रहा।

पूज्यश्री ने जैसे ही अमृत के हाथ में ओघा दिया... वैसे ही वह खुशी में नाच उठा और फिर इतना नाचा, इतना नाचा कि नाच-नाच पर कई दिनों से दबी इच्छा उसकी तब पूरी हो गई।

इसी समय सदियों पुरानी वज्रस्वामी कि घटना आँखों के आगे तैरने लगी। वहाँ जो भी मौजूद थे, सबकी आँखें छलछला उठीं।

ओघा तो मिल गया, लेकिन बाल काटने के लिए नाई को कहाँ से लाया जाय?

बाहर जाना तो संभव ही नहीं था। वहाँ विरोधियों का आक्रोश चरम पर था।

पूज्यश्री ने आदेश दिया और श्री चन्द्रसागरजी ने अपनी कैंची निकाली और अपने ही हाथों अमृत का मुंडन कर दिया...

शाबाश अमृत ! दीक्षा का पहला मुंडन दादा गुरुदेव के हाथों प्राप्त कर तुम कितने बड़े भाग्यशाली हो गए हो?

ललाट पहले ही चमक रहा था, अब सिर का मुंडन हो गया तो चमक और बढ़ गई। मुँह गोल-मटोल हो गया और वह भी एक गोल मीठे लड्डुकी तरह मोहक और मधुर लगने लगा।

दीक्षाविधि के अंत में अमृत को नाम मिला -

मुनिश्री धर्मसागरजी के शिष्य बालमुनि अरुणोदयसागरजी....!

विक्रम संवत् १९८८ अगहन कृष्णपक्ष की एकादशी अत्यन्त ही सुन्दर ढ़ंग से दैदीप्यमान हो उठी।

अत्यन्त कम उम्र के ये बालमुनि साधुवेश में वास्तव में

लोगों की आंखों में समा रहे थे... क्योंकि आने वाले दिनों में उन्हें सबके हृदय में बसना ही था।

नन्हीं काया और उस पर छोटे कपड़े तथा हाथ में था एक छोटा-सा ओघा, फिर जो भी उसे देखे, तुरन्त ही मोहित हो जाय, ऐसे ये बालमुनि मस्त होकर चारित्र आराधना करने लगे....

मुनि श्री धर्मसागरजी म. एवं सुश्राविका मणिबहन के हृदयों को इससे बहुत संतुष्टि मिली।

ओह ! कितना अद्भुत भाग्योदय ! शासन की शरण में दो-दो दीपों को प्रस्तुत करने का कितना अमूल्य लाभ प्राप्त हुआ है।

दीक्षा तो हो गई... अब बड़ी दीक्षा की तैयारी करने का अवसर आया। कम उम्र लेकिन फिर भी उल्लासपूर्वक मांडली के जोग किए और अहमदाबाद की विद्याशाला के विशाल खंड में पू. आचार्यदेव श्री मेघसूरि म. के करकमलों द्वारा संवत् १९८१ की फागुन कृष्ण पक्ष पंचमी को बड़ी दीक्षा संपन्न हुई। लेकिन इस समय बालमुनि का नाम बदल दिया गया।

गागर में सागर

इन नन्हें बालमुनि को जो नाम दिया गया वह उनके लिए ही क्लिष्ट बन गया... स्वयं का नाम स्वयं को ही रास नहीं आ रहा था... अरुणोदय के स्थान पर अनुलोदय का उच्चारण हो जाता। इसलिए बड़ी दीक्षा के अवसर पर पू. आगमोद्धारकश्री की सूचना के अनुसार बिना किसी मात्रा वाला एकदम सरल नाम दिया.. अभयसागरजी ! आज सच में अमृत की गागर में अभय का सागर मानों उद्भवित हुआ हो।

बालमुनि अभयसागर सबके प्रिय थे। इसलिए सब उन्हें खिलाते, पुचकारते और ध्यान रखते थे कि उन्हें कभी किसी वस्तु की कमी न हो।

लेकिन जो स्थिति चल रही थी, उसे पूज्य आगमोद्धारकश्री की नज़रो ने भाँप लिया।

बालमुनि को जो अधिक लाड़-प्यार दिया जा रहा था, वह उनके ही जीवन में जोखिम निर्मित

करनेवाला बन सकता है और उसके फलस्वरूप बाल दीक्षा का जो लक्ष्य निर्धारित किया जाता है, वह फलीभूत नहीं हो सकता है।

अतः उन्होंने मुनिश्री धर्मसागरजी को इस बारे में इशारा किया। पिता मुनि धर्मसागरजी समझ गए कि मात्र पुत्र को दीक्षा दिलाने या उसे अपना शिष्य बनाने से ही संतुष्ट नहीं हो जाना है।

दीक्षा देने के पहले की स्थिति की तुलना में दीक्षा देने के पश्चात् स्वयं की जवाबदारी कई गुना बढ़ जाती है।

अब तक तो मेरे कन्धों पर मेरी व मेरे एक ही शिष्य की जवाबदारी थी। अब जवाबदारी बढ़ गई है आरै उस में यह तो पूरा बालक ही है, साथ में शरारती और नटखट है लेकिन है होशियार व चतुर।

इस बालक ने कोई शाला या विद्यालय अब तक कभी देखा नहीं था और न ही वर्णमाला या गिनती सीखी थी। इसकी पढ़ाई पर पर्याप्त ध्यान देना होगा और पू. धर्मसागरजी महाराज ने उतनी ही प्रतिबद्धता के साथ उन पर ध्यान दिया

प्रतिभा की पगध्वनि

पहला चातुर्मास डभोई में किया। वहाँ एक शिक्षक नियुक्त कर व्यवहारिक अध्ययन का श्री गणेश कर दिया गया और दूसरी और मौखिक रूप से ही साधु समाचारी (लोकव्यवहार) के सूत्र, नवस्मरण चार प्रकरण, तीन-भाष्य, दशवकैलिक आदि सूत्रों को कंठस्थ कराया...

आप कल्पना भी न कर सकें, इस प्रकार की प्रखर बुद्धि बालमुनि अभयसागरजी की रही। जब बालमुनि को पढ़ना भी नहीं आता था तब मुनि श्री दर्शनसागरजी म. से सुन-सुन कर ही मात्र एक ही दिन में साढ़े तीन सौ गाथाओं का पक्खिसूत्र उन्होंने कंठस्थ कर लिया।

अपने पुत्रमुनि की इस प्रकार की शक्ति का अपव्यय न हो, बल्कि उसका सदुपयोग शासन व

समुदाय के लाभ के लिए ही हो, इस उद्देश्य से मुनि श्री धर्मसागरजी का विचार था कि अभ्यास के लिए स्थान व वातावरण पूरी तरह अनुकूल और अलिप्त होना चाहिए, जिससे दूसरी दिशा की ओर के निमित्त दिखाई ही नहीं दे... इसके लिए मालवा एक अच्छा व उपयुक्त क्षेत्र माना जाता है।

वैसे भी इस ओर साधुओं का विचरण कम ही है। वहाँ जाने पर आसपास के लोगों को धर्म की ओर प्रेरित भी किया जा सकेगा और दूसरे अन्य कोई अनुपयोगी कार्य न होने से बाल-मुनियों की अभ्यास प्रक्रिया भी उचित ढंग से विकसित हो सकेगी।

इस प्रकार का विचार कर वे अपने गुरुदेव पू. चन्द्रसागरजी म. के साथ मालवा पधारे और रतलाम में चातुर्मास किया।

सविता की मासूम कविता

इस ओर मणिबहन ने अपनी लाड़ली सविता को भी तैयार कर दिया। इसलिए सविता भी घूंघरे बांधकर बैठ गई कि कब वह भी ओघा ले कर भाई महाराज की तरह नाचे और कब बालसाध्वी बने?

सविता की उम्र के साथ उसकी भावना भी बढ़ती जा रही थी। दीक्षा योग्य उम्र होने से रतलाम आए और दीक्षा के लिए चर्चा हुई.. अंत में यही तय किया गया कि रतलाम में ही दीक्षा का कार्य संपन्न किया जाय।

यह बात जब चारों ओर फैली तब रतलाम का श्री संघ उत्साहित हो गया और संवत् १९९९ के अगहन माह की शुक्ल पक्ष की तृतीया को माँ और बेटी दोनों की दीक्षा संपन्न हो गई...

मणिबहन तब साध्वीजी श्री सरस्वतीश्रीजी की शिष्या साध्वी श्री सदगुणाश्रीजी बन गई।

साथ ही लाड़ली सविता बनीं श्री सद्गुणाश्रीजी की शिष्या बालश्रमणी श्री सुलसाश्रीजी।

कितना धन्य है यह परिवार? न मालूम कितने

जन्मों के सम्बन्धों से बना होगा यह कुटुम्ब। तभी तो सब एक जैसे और एक ही दिशा के मार्ग पर चलने वाले मिल सकते हैं ? पाप की खतरनाक परम्परा को पोषित करने वालों को जड़मूल से ही नेस्तनाबूद करने का कार्य सामान्य पुण्य व पुरुषार्थ से संभव नहीं है।

निश्चित ही ऐसे परिवार से तो देवलोक में बसनेवाले देवतागण भी इर्ष्या करते होंगे? उनके मुखारविन्दों से भी शब्द निःसृत होते होंगे.. वाह ! धन्य है यह परिवार...

मालवा शिक्षाक्षेत्र - कर्मक्षेत्र

मालवा की भूमि मुनिश्री धर्मसागरजी को बहुत अनुकूल लगी। इसलिए उन्होंने अपने पूज्यों से आज्ञा प्राप्त कर अपना कार्यक्षेत्र व शिष्यों का शिक्षणक्षेत्र मालवा ही बनाया।

वे एक गाँव से दूसरे और फिर दूसरे से तीसरे गाँव की ओर विहार करते हर गाँव में परमात्मा की, परमात्मा के मन्दिरों की व देव-द्रव्य आदि की उपेक्षा जैसे मुद्दों पर ध्यान देकर उसके लिए कार्य करते और सम्बन्धित दोषों को दूर कराते। व्याख्यान वगैरह में पूजा आदि की सुन्दर विवेचना कर पूजा करनेवालों का वहाँ वे समूह बनाते...

मन्दिर तो बड़े-बड़े थे लेकिन स्थानकवासियों का प्रभाव बढ़ने से उन मन्दिरों में पूजा करने वाले और कहीं- कहीं तो दर्शन करने वाले भी मिलते नहीं थे... इसलिए मन्दिर में भयंकर आशातनाऐं होती थीं... इसके निवारण के लिए उन्होंने एक अच्छा पूजा करनेवाला वर्ग बनाया। जिससे मन्दिर की गरिमा रहे और आशातनाऐं न हों।

इसके साथ ही शिष्यों के अभ्यास पर भी वे पर्याप्त ध्यान देते थे।

गोचरी-पानी आदि की व्यवस्था स्वयं ही संभालते थे और अपने शिष्यों को सदैव एक ही बात समझाते कि... चारित्र लेना कठिन नहीं है, लेकिन उसे लेने के पश्चात उसका पालन बहुत कठिन है व चारित्र

का ठीक से निरतिचार पालन तब ही हो सकता है, यदि आप में वैराग्य हो। बिना वैराग्य के तो चारित्र के आचार-विचार में शिथिलता आयेगी ही और वैराग्य को मजबूत बनाने के लिए शास्त्रों-ग्रंथों का गहन अध्ययन बहुत आवश्यक है और उसके लिए यह भी बहुत जरूरी है कि उसके लिए बुनियाद जैसे व्याकरण आदि विषयों में पारंगत हों और इसके लिए सुयोग्य बालवय यदि आपको मिली है, तो बिना किसी प्रमाद के उस ओर आगे बढ़ जाएँ... अन्य विषयों पर ध्यान देने के स्थान पर अभ्यास में ही पर्याप्त ध्यान दें...।

इस प्रकार वे बारम्बार शिष्यों को प्रेरित करते।

इस प्रेरणा की ऊर्जा के कारण प्रथम शिष्य महोदयसागरजी ने तो सच में कमाल ही दिखा दिया...

कुल अठारह हजार श्लोक वाला पूरा व्याकरण कंठस्थ कर लिया और साथ ही अन्य बहुत-सा अभ्यास भी पूरा किया।

छोटा लेकिन है राई का दाना।

अभ्यास के साथ आत्मविश्वास और उतना ही जोरदार उत्साह।

तेरह वर्ष की उम्र से ही वे व्याख्यान देते और व्याख्यान भी ऐसे कि उनका नाम हर तरफ गूंजने लगता और हजारों की संख्या में लोग व्याख्यानों के लिए एकत्रित होने लगते। व्यक्तित्व इतना उच्च स्तरीय कि उतनी कम उम्र में भी उनसे अधिक उम्र के दो व्यक्ति उनके शिष्य हो गए थे। प्रथम शिष्य का नाम पू. मुनि दर्शनसागरजी म. (बाद में पू. गच्छाधिपति श्री दर्शनसागरसूरिजी) और दूसरे का नाम है पू. मुनि श्री न्यायसागरजी म.।

कई अच्छे-अच्छे धुरन्धर आचार्यदेवों की नज़र इस बालमुनि पर जम गई। पूज्य आचार्यदेव श्री नेमिसूरि म., पू. आचार्यदेव श्री नीतिसूरि म. तो कहते थे कि- "इसके पास युगप्रधान जैसा व्यक्तित्व और बुद्धिप्रागल्भ्य है, इन्हें ठीक से तैयार करें..."

गहरा घाव

तब से ही इन बालमुनि पर धर्मसागरजी म. की अथक मेहनत रही। लेकिन दुर्भाग्य के क्रूर खंजर ने इन बालमुनि पर तीखे घाव किए। मात्र सत्रह वर्ष की उम्र में ही कंठमाल नामक भयंकर रोग के वे शिकार हुए। डग गाँव में बहुत इलाज कराया गया, फिर भी कोई सफलता नहीं मिली। यह खबर मिलने पर तब इन्दौर के श्रीसंघ ने आग्रहयुक्त अनुरोधकिया। इसलिए वे इलाज के लिए इन्दौर पधारे। बहुत उपचार किये गए, लेकिन तकदीर तो करवट बदलती ही रही और मात्र अठारह वर्ष, की युवा उम्र में ही कालराज का वह वार जीवन के लिए घातक सिद्ध हुआ और उसने संघ के हाथ से चमकते कोहिनूर हीरे को छीन लिया। अपने स्वयं के पितामुनि के मुख से अद्‌भुत व आदर्श निर्यामणा करते-करते ही उन्होंने अपूर्व समाधि प्राप्त कर ली। उस समय पूरे भारत के संघों ने शोक अनुभव किया।

इतने तेजस्वी-यशस्वी शिष्य की जब कुसमय ही विदाई हो जाय, तब पितृहृदय धर्मसागरजी म. ने किस प्रकार का घाव अपने दिल पर अनुभव किया होगा? कल्पना से परे कोई वस्तु नहीं है, फिर भी वियोग के इस घाव पर वैराग्य का मलहम लगा कर तथा समाधि की पट्टी बांधकर वे पुनः तैयार हो गए और उन्होंने अपना लक्ष्य अपने छोटे शिष्य अभयसागरजी की ओर केन्द्रित किया।

अभय की विकासयात्रा

भोपाल के श्री बलराम शर्मा नामक पंडित व्याकरण सिखाने के लिए तथा दक्षिणी पंडित श्री राजाराम शास्त्री साहित्य की समझ विकसित करने के लिए बुलाए गए। मंदसौर के श्री नरनाथजी झा से ध्यानपूर्वक न्याय का अभ्यास कराने लगे।

उम्र बढ़ने के साथ ही बालमुनि अभयसागरजी की गंभीरता भी बढ़ने लगी... अभ्यास में उचित ध्यान दिया और मात्र तेरह वर्ष की उम्र में ही व्याकरणतीर्थ

की परीक्षा दी।

इस परीक्षा में कई ब्राह्मण और पंडित पुत्र भी थे फिर भी उन सबकी बुद्धिमत्ता को पार कर सबसे ऊँचा स्तर हासिल किया और उन्होंने व्याकरण तीर्थ उपाधि प्राप्त की।

इसके पश्चात् न्याय व साहित्य की प्रथमा तथा मध्यमा की परीक्षाएँ उन्होंने दी। इस क्षेत्र में भी उनके प्रखर व्यक्तित्व ने सबको चमत्कृत कर दिया।

इसके बाद बनारस के किंग्स कॉलेज के व्याकरण साहित्य की मध्यमा की परीक्षा दी और उल्लेखनीय विद्वत्ता सें वे संपन्न हुए।

श्री अभयकांत ठाकुर नामक मैथिली पंडित के पास से उन्होंने न्याय व वेदांत का गहन शिक्षण अर्जित किया।

बालमुनि श्री अभयसागरजी की अभ्यास में इस प्रकार की प्रगति से आकर्षित हो कर पू. मुनिराज श्री लब्धिसागरजी म. ने अपने पुत्रमुनि श्री सूर्योदयसागरजी म. को जिन्होंने साढ़े छः वर्ष की उम्र में पू. आगमोद्धारकश्री से दीक्षा ली थी, उन्हें भी पू. धर्मसागरजी म. के पास रखा।

श्री सूर्योदयसागरजी और श्री अभयसागरजी की उम्र व दीक्षा के समय में मात्र छः माह का अंतर था, इसलिए दोनों समवयस्क ही थे।

दोनों साथ पढ़ाई करते, ज्ञान अर्जित करते और साथ ही रहते थे। दोनों के बीच मित्रता के सम्बन्ध इतने प्रगाढ़ बन गए कि ज़िन्दगी के अंत तक बिना किसी परिवर्तन के वे सुमधुर बने रहे।

मालवा के डग, नलखेडा, बोलिया, मन्दसौर, उज्जैन, सीतामहू, रतलाम, इन्दौर आदि नगरों में वे विचरण करते और ज्ञानार्जन करते...

यहाँ यह उल्लेनीय है कि ज्ञानार्जन के साथ चारित्र के प्रति उनकी जागृति वज्र के समान थी और चारित्र की कीमत पर ज्ञानप्राप्ति का मोह उन्होंने कभी भी स्वीकार नहीं किया..

चारित्र-आचार का महत्व तो उनके जीवन में इतना गुंथा हुआ था कि उसकी सुगन्ध से कई व्यक्ति पूरी ज़िन्दगी लाभान्वित होते रहे।

पू. गुरुदेवश्री का... (यहाँ से मैं उन्हें पू. अभयसागरजी म. के स्थान पर पूज्य गुरुदेवश्री या पूज्यश्री के नाम से संबोधित करूँगा। पाठक इसका ध्यान रखें.)

प्रभावी व्यक्तित्व

यह वास्तव में जानने जैसा है कि...पू. गुरुदेवश्री का व्यक्तित्व इतनी कम उम्र में ज्ञान-चारित्र की दृष्टि से कितना महिमामय, पुण्यमय व चमत्कारी था।

इन्दौर में श्री लालचन्दजी नागौरी नामक एक श्रावक रहते थे। अधिक उम्र में भी उनका आराधनामय आदर्श जीवन था।

उस समय उनका इन बालमुनि पर बहुत प्रेम। इनके प्रति आंतरिक रूप से प्रेम की स्फूरणा जागृत होती। उन श्रावक को उस समय नम्बर लगाने का बहुत शौक और उनका इन बालमुनि से ये श्रावक पूछ लेते-

"मा, राज"! आपके खेलने के लिए कितनी वस्तुएँ लाऊँ?"

तब बालमुनि अपनी उस उम्र में सहजभाव से कह देते थे "इतनी...."

बस बालमुनि जो अंक बताते वे उस अंक का नम्बर फीचर में लगा देते और उसका अचूक लाभ उन्हें मिलता।

कई बार पूछे गए नम्बर उन्होंने लगाए, लेकिन नुकसान नाम मात्र को भी नहीं। केवल लाभ और लाभ ही लाभ...

न तो ऐसी कोई साधना की और न ही कोई जप ध्यान किया, फिर भी कितनी अद्भुत रही उनके वचनों की सिद्धि।

इस प्रकार व्याकरण, न्याय और साहित्य आदि का अभ्यास कर वे गुजरात पधारे। अब उनकी इच्छा हुई, विविध शास्त्रों का अभ्यास करने की .. लेकिन उनकी इस तमन्ना पर तलवार का प्रहार हुआ..

व्याधि की आँधी

पूज्य गुरुदेव का शरीर एक विकराल व्याधि से ग्रस्त हो गया। यह एक प्रकार की वात व्याधि थी लेकिन वेदनादायी और विचित्र थी।

पूरा शरीर जकड़ गया, मात्र मुँह और दाएँ हाथ में ही गति थी, इसके अलावा पूरा शरीर चेतनाहीन जैसा हो गया था। पराधीनता की कोई सीमा नहीं और वेदना इतनी कि शरीर के किसी भी भाग को स्पर्श करते तो जोर की चीख निकल जाती थी। मुनिश्री धर्मसागरजी म. के दिल में दहशत फैल गई.. क्रूर काल राजा ने प्रथम शिष्य को तो अपना ग्रास बना ही लिया था, लेकिन फिर भी क्या उन्हें तृप्ति नहीं हुई... कि इस पर भी अपना घातक पंजा फैलाना शुरु कर दिया ? लेकिन.. नहीं... इस बार इलाज में किसी भी प्रकार की कोई कमी नहीं रखनी है।

अच्छे-अच्छे वैद्य और बड़े-बड़े डाक्टर आए, लेकिन रोग मिटता नहीं था और न ही वेदना कम हो रही थी।

इस प्रकार साल पर साल बीतते चले गए। पू. गुरुदेवश्री ने भयंकर त्रास और यातना में छः वर्ष गुजारे।

अंत में डग के हकीमजी के संपर्क में गुरुदेवश्री आए और उनके उपचार से उन्हें राहत मिली।

यद्यपि व्याधि, वेदना व पराधीनता वैसे बाद में भी लम्बे समय तक रही, लेकिन पूज्य गुरदेवश्री बताते थे कि वे सात वर्ष उनके लिए आशीर्वाद स्वरूप ही रहे। वे बताते थे कि... !

अन्य साधुओं से मुझे उस समय जो सेवा लेनी पड़ी, उसे मैं अपना परम दुर्भाग्य समझता हूँ, लेकिन क्या करूँ? उस समय मैं लाचार था.. लेकिन उन सात

वर्षों के दौरान जो मुझे पढ़ने का और चिन्तन का अवसर मिला, वह नितान्त अद्भुत था!

उस समय और कुछ तो नहीं किया जा सकता था, इसलिए पू. गुरुदेवश्री ने इतना अधिक पठन किया कि उसमें दुनिया के सभी विषयों से सम्बन्धित सामग्री का समावेश हो जाता था और उसमें संस्कृत-प्राकृत तो विशेष रूप से थे।

व्याधि में विकास-गोष्ठी

पू. गुरुदेवश्री बताते थे कि-मैंने व्याकरण-न्याय साहित्य का जो भी अभ्यास किया था, उन सबकी समीक्षा का यह अवसर था। अभ्यास की अवधि में ये विषय जितने खिल नहीं पाए थे, उतने इस दौरान वे खिले। इस वाचन के द्वारा चिंतन शक्ति उल्लेखनीय रूप से विकसित हुई।

वैसे एक दृष्टि से यदि देखें तो बीमारियों की पीड़ा का उदयकाल मेरे लिए बहुत ही लाभकारी रहा। क्योंकि इसी अवधि में सूरिपुरंदर पूज्य हरिभद्रसूरि म. के गंभीर ग्रंथों, पूज्य उपा. श्री यशोविजयजी म. के कई नए ग्रंथों, पूज्य उपा. श्री धर्मसागरजी की विवेचनाओं से भरपूर ग्रंथों, विविध चौवीशियों आदि ग्रंथों के वाचन से मोहनीयता के क्षयोपशम का मुझे अत्यधिक लाभ हुआ।

इस दृष्टि से अशाता के उदय की अपेक्षा से मोहनीय के क्षयोपशम का लाभ क्या कम महत्वपूर्ण है?

"ठोकर लगी तो खून भी निकला, लेकिन साथ में स्वर्ण का कलश भी मिला, बस इस प्रकार का आनन्द मुझे तब मिला।"

पूज्यश्री का ज्ञान के प्रति लगाव इतना उत्कट था कि उस व्याधिमय अवस्था में भी यदि कोई विद्वान या जानकार वहाँ आ जाता था तब पूज्य गुरुदेव उसके साथ विवेचनाओं में पूरी तरह निमग्न हो जाते। इस संदर्भ में एक प्रसंग स्मरणीय है।

संवत् २००३ में साबरमती में पूज्य गुरुदेव की

स्वास्थ्य की स्थिति जानने कि लिए पू. आचार्यदेव श्री अमृतसूरीश्वरजी म. पधारे और रात्रि में वहीं रूक गए। रात्रि में बैठक हुई । साथ में पू. मुनिश्री धुरन्धर विजयजी म. (पू. आ. धर्मधुरन्धरसूरि म.) भी थे। पू. आचार्यदेवश्री इन दोनों विद्वानों को सामने बिठा कर विविध प्रकार की चर्चाएँ करते और दोनों को प्रोत्साहित करते। चर्चा के पश्चात् छंदों का पाठ चालू हुआ। आचार्यदेवश्री की प्रेरणा से दोनों विविध प्रकार के छंदों को गाकर सुनाते। देर रात तक का समय इस प्रकार की ज्ञानोपासना में गुजरा। मालूम भी नहीं हुआ तब कि वेदना कहाँ गई और कहाँ गई थकान? ''ज्ञानमग्नस्य यच्छर्म तद्वत्कुं नैव शक्यते'' यह उपाध्यायजी म. की उक्ति का साक्षात्कार ऐसे समय होता था। बैठक के अत में आचार्यदेवश्री के शब्दथे - ''रत्न को अच्छी तरह निखारा है।''

इस अवधि में ज्ञान के माध्यम से जप-योग-ध्यान जैसे विषयों की उच्च स्तरीय जानकारी हासिल की व चिंतन के द्वारा वर्तमान पीढ़ी का जब आकलन करते... तब विचार आता कि इस समय की पीढ़ी में तो धर्म के संस्कार दिखाई पड़ते हैं, लेकिन नई पीढ़ी तो इससे पूरी तरह अछूती क्यों है ? नई पीढ़ी में धर्म के संस्कार प्रवाहित करने कि लिए क्या प्रयास करना चाहिए ? समाज को धर्म व संस्कृति के साथ जोड़ने के लिए विभिन्न प्रकार के नुस्खों का वे अवलोकन करते और उस दौरान इसके लिए प्रयत्नशील बनने हेतु संकल्पित भी हुए।

लम्बे समय तक चलने वाली इस व्याधि ने बिदाई ले ली । गुरुदेवश्री स्वस्थ हो गए इसलिए पुरानी तमन्ना फिर प्रबल होने लगी और आगमाभ्यास की लौ पुनः प्रज्वलित हो गई।

आगम के झरोखे से सैर

पूज्य आगमोद्धारकश्री और गच्छाधिपति पू. माणिक्यसागरसूरीश्वरजी म. के पास आगमिक अभ्यास के लिए प्रयाण किया। गुरुदेवश्री की पात्रता ने पू. आगमोद्धारकश्री को पूरी तरह मोहित कर लिया,

इसलिए उन्होंने आगम की पात्रता के साथ ही कृपापात्रता भी हासिल कर ली...

"गुरवः शरणं मम" "गुरुकृपा सर्व-गुण-भाजनं स्वात" प्रत्येक गुण प्राप्त करने का पात्र गुरुकृपा ही है। यह बात पू. गुरुदेवश्री ने अपने हृदय में अंकित कर ली थी और इसी के फलस्वरूप उन्हें पू. आगमोद्धारकश्री के दिल में जगह प्राप्त हुई।

वे अंतिम दिन थे।

पूज्य आगमोद्धारकश्री ने वैशाख शुक्ल पक्ष षष्टी से अनशन स्वीकार किया था। यह वैशाख शुक्ल पक्ष चतुर्थी या पंचमी की बात है। उसस मय पू. आगमोद्धारकश्री अत्यन्त अस्वस्थ थे। गैस की बीमारी इतने तीव्र रूप में थी कि जरा भी चैन नहीं मिल रहा था। अंदर घूमती गैस छाती और पेट में कांटों की तरह चुभ रही थी। फिर भी ऐसी स्थिति में वे अपने ध्यान में मस्त थे। किसी के साथ भी बोलते नहीं थे।

उस समय पू. गुरुदेवश्री "लज्जा संयम" से सम्बन्धित विवरण प्राप्त करने के लिए शास्त्रों के पन्ने पलट रहे थे, लेकिन वह वर्णन उन्हें कहीं नहीं मिल रहा था। सब ओर ढूंढ रहे थे और उसके लिए कई प्रकार के ग्रंथों को पलट रहे थे। यह सब जब पू. आगमोद्धारकश्री के ध्यान में आया, तब उन्होंने पू. गुरुदेवश्री को अपने पास बुलाया और पूछा :-

"अभय! क्या ढूंढ रहे हो?"

तब पू. गुरुदेवश्री ने लज्जाभाव से कहा कि उन्हें "लज्जा-संयम" का वर्णन नहीं मिल रहा है। तब तुरन्त ही धीमी आवाज़ में पू. आगमोद्धारकश्री ने बताया कि - फलाने ग्रंथ के फलाने प्रकरण में इस क्रमांक का पृष्ठ निकालो और देखो...

पूज्य गुरुदेवश्री ने वैसा ही किया और उस पृष्ठ पर वह वर्णन उन्हें मिल गया। पू. गुरुदेवश्री को उस समय आश्चर्ययुक्त आनन्द हुआ।

उतनी अस्वस्थ हालत में भी पू. गुरुदेवश्री पर

उनकी पूर्ण कृपादृष्टि थी। वैसे भी उन्होंने पू. गुरुदेवश्री को खुली मंजूरी दे दी थी कि वे किसी भी स्थिति में प्रश्न पूछ सकते हैं।

ऐसे शासन के सरताज और वास्तविक अर्थ में आगम के उद्धारक पूज्यश्री की वरदकृपा प्राप्त होने के पश्चात् फिर व्यक्ति में भला कौन सी कमी रह सकती है? यही प्रश्न है ?

इस प्रकार आगमिक अभ्यास में गहरी पैठ लगाकर आगम का वह गहन ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया कि अच्छे-अच्छे आचार्यदेव भी आश्चर्यचकित थे।

गांभीर्य गागर

उस समय गुरुदेव की उम्र थी २२ वर्ष।

पालीताणा में अपने दादा गुरुदेव पू. आचार्यदेव श्री चन्द्रसागर सरीश्वरजी म. गुरुदेव पू. गणिवर श्री धर्मसागरजी म. आदि का विशाल मुनि परिवार प्रायः तब खुशालभवन में बिराजमान था। अनेक पू. मुनिवरों द्वारा लिए गए वरसीतप के पारणों का वह अवसर था।

उस समय गुरुदेवश्री को यात्रा का विशेष लोभ रहता था। रोज यात्रा के लिए निकलते थे, लेकिन मात्र यात्रा के उद्देश्य से नहीं, बल्कि यात्रा के साथ ही गिरिराज की छोटी से छोटी जानकारी एकत्रित करना भी उनका मुख्य हेतु रहता था। उस दौरान गिरिराज के सम्बन्ध में कई तथ्य पूज्यश्री की जानकारी में आए थे।

शास्त्रों में वर्णन आता है कि इतने करोड़ मुनिवरों ने गिरिराज पर चातुर्मास किया और इतनी विशाल संख्या में मुनिवरों ने गिरिराज पर सिद्धि प्राप्त की, यह सब संभव किस प्रकार हुआ ? इस प्रकार की शंकाओं को संशोधन के द्वारा उन्होंने स्वयं ही आधारहीन बता कर शास्त्रीय बचनों के प्रति असंदिग्धता को प्रतिपादित किया।

इस स्थिरता के दौरान एक दिन दुपहर में पूज्य दादा गुरुदेवश्रीने पू. गुरुदेव को अपने पास बुलाया और मधुर वाणी में कहा -

"अभय ! तुमने तो बहुत अध्ययन किया है और आगम में भी तुमने अच्छी प्रगति की है तो इसका स्वाद क्या तुम अपने साधुओं को नहीं चखाओगे ? सभी साधुओं की इच्छा हैं कि उन्हें महानिशीथ सूत्र सुनना है तो क्या वह तुम उन्हें पढ़ कर नहीं सुनाओगे ?

महानिशीथ अर्थात अत्यन्त जटिल सूत्र ! अपवाद व उत्सर्ग मार्ग की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातें उसमें आती हैं। उसकी वाचना (प्रवचन) की बात सुनकर पूज्य गुरुदेवश्री कुछ देर के लिए विचारमग्न हो गए। यह देखकर पूज्यश्रीने पुनः कहा !

"अभय ! क्या विचार कर रहे हो ? कल दोपहर तुम्हें एक घंटे वाचना देनी हैं। मैं भी इसमें सम्मिलित होने वाला हूँ। यह तुम्हें मंजूर है ?"

"साहबजी, मेरी कहाँ हैसियत है वाचना देने की, लेकिन आपकी असीम कृपा से वह हैसियत मुझे मिलेगी ही । इसी विश्वास के आधार पर आपके आदेश को मैं शिरोधार्य करता हूँ।"

फिर दूसरे ही दिन पू. दादा गुरुदेव को वंदन कर वासक्षेप के पश्चात् महानिशीथ पर वाचना प्रारम्भ हो गई। उस वाचना में उनकी अपनी उम्र से भी बहुत अधिक उम्र के कई बुजुर्ग व्यक्ति भी वहाँ विराजमान थे। सबके प्रति विनय व आदर प्रकट कर गुरुदेवश्री वाचना करने लगे। मांगलिक हुआ और वाचना शुरु कर दी। कई पूज्य हाथ में उसकी प्रति लेकर बैठे थे।

लेकिन थोड़ी देर के पश्चात् ही पूज्यश्री की वाचना की गति इतनी अधिक बढ़ गई कि सुननेवाले मुनिवरों को कहना पड़ा "भाई कुछ धीरे, आप पढ़ कर जितनी तेजी से बोल सकते हैं, उतनी गति से तो हम पढ़ भी नहीं सकते हैं। इसलिए थोड़ा धीरे।"

तब पू. गुरुदेव श्री ने कहा–"देखिए, जहाँ धीमे पढ़ने का होगा, वहाँ मैं धीमे पढूंगा और जहाँ जल्दी पढ़ना होगा, वहाँ में जल्दी पढूंगा।"

और.. वाचना आगे बढ़ी। इसमें उन्होंने इतने सुन्दर ढंग से स्पष्टता की कि सुनने वाले सभी मुग्ध हो

गए ! ऐसा लगता था मानां ज्ञान की नदी पूरे प्रवाह में बह रही हो।

घंटा कब पूरा हुआ, मालूम ही नहीं पड़ा। वाचना पूरी होने पर पू. दादा गुरुदेवश्री ने पूज्य गुरुदेवश्री की पीठ थपथपाकर उन्हें शाबाशी दी।

एक दिन सायंकाल पानी चुकाने के समय (सूर्यास्त के पूर्व लिया गया पानी) साधु मंडलाकार बैठे हुए थे, तब कुछ साधुओं ने पूछा–

''अभयसागरजी ! वाचना में जब हमने आपको कहा कि धीमे पढ़ें तब आपने कहा कि : जहाँ धीमे पढ़ने जैसा होगा, वहाँ धीमे पढ़ूँगा तो इसका अर्थ क्या है? यह हमें समझ में नहीं आया।''

तब पूज्य गुरुदेवश्री ने अत्यन्त विनम्रता से कहा कि : ''यह अत्यन्त ही गंभीर ग्रंथ है। इस ग्रंथ की सभी बातें सब को सार्वजनिक रूप से नहीं बताई जा सकती। कितनी ही बातें ऐसी भी थी जो सब के समझ में आनेवाली भी नहीं थी। इसलिए जब भी वैसी बातें आती थी तो मैं उन्हें जल्दी से पढ़ देता था और शेष सामग्री को मैं धीमी गति में पढ़ता था। इस नीति के पीछे मेरा अन्य कोई आशय नहीं था।''

पूज्य गुरुदेवश्री का यह जवाब सुनकर सबको आश्चर्य हुआ। मात्र बाईस वर्ष की उम्र में कितना शास्त्राभ्यास और साथ में कितनी गंभीरता। उस समय उपस्थित सभी बुजुर्गों के मुँह से यही उद्‌गार निकल रहे थे कि निश्चित ही शासन का यह रत्न बहुत प्रभावी व पानीदार सिद्ध होगा।

अपने पू.दादा गुरुदेव और वरिष्ठों को भी चकित कर दे, वैसी लब्धि आगमज्ञाता पू. गुरुदेवश्री ने तब उपलब्ध की थी।

इस प्रकार की गंभीरता आगमज्ञाता होने के पश्चात् भी पूज्यश्री ने कभी भी गुरुत्व की उपेक्षा नहीं की। उनका दृढ़ विश्वास था कि उन्हें गुरु सान्निध्य में जो भी प्राप्त होगा, वह उनके लिए अमृत–तुल्य है। उन्हें इसके लिए कहीं और प्रयास करने की जरूरत

नहीं है। उनके लिए यही पर्याप्त है। इसलिए जब उनकी पढ़ाई करने की उम्र थी, तब भी उनका एक ही जीवनमंत्र था–गुरु की आज्ञा शक्तिमान होती है। इस सन्दर्भ में मुझे यहाँ एक घटना याद आ रही है। गुरु की आज्ञा के प्रति पूज्यश्री कितने प्रतिबद्ध थे, वह यहाँ स्पष्ट होता है।

कोई भक्त एक बार पू. दादा गुरुदेवश्री (महोपाध्याय धर्मसागरजी म.) के पास आया और अनुरोध किया कि वे उसके घर भातपानी का लाभ देने के लिए पधारें... पूज्यश्री ने उन भक्त को बहुत टालने की कोशिश की लेकिन वे भक्त थे कि अपना आग्रह छोड़ ही नहीं रहे थे... इन भक्त का घर भी बहुत दूर था, लेकिन चूंकि आग्रह बहुत था, इसलिए पूज्य गुरुदेवश्री ने कहा कि अभयसागर ! जरा इन भाई के घर चले जाइए ! बस, एक ही घर जाकर वापस आ जाना। तहत्ति कह कर पूज्यश्री तैयार हो गए। भर दुपहरी में तेज गर्मी सहन करते हुए वे उन भाई के साथ निकले, और फिर चलते रहे, चलते रहे। लगभग डेढ़ दो किलोमीटर दूर निकल गए। तब भाई का घर आया। वे भाई जिस चाली में रहते थे, उस चाली में कई जैन परिवार थे। और इतनी दूर पूज्य साधु म. के आने का कब योग हो, इसलिए सभी घरों से बहुत आग्रह हुआ, लेकिन चूंकि गुरुदेव की आज्ञा थी कि एक ही घर जाना, इसलिए उन भाई के घर ही भातपानी का लाभ देकर पूज्यश्री लौट आए.. फिर भी उस चाली के बहुत से लोग आग्रह करते रहे और पूज्यश्री के साथ चलते रहे.. और इस प्रकार वे उपाश्रय तक आ गए और फिर साथ आए लोग पूज्य गुरुदेश्री को कहने लगे – "साहब, आपके ये शिष्य हमारे घर–आँगन तक आए, लेकिन बिना हमारे घर पधारे ही ये वापस आ गए हैं। साहब कृपा कर हमें भी लाभ प्रदान करें।" पूज्य दादा गुरुदेवश्री को मालूम नहीं होगा कि वहाँ एक से अधिक घर होंगे। इसलिए एक घर जाने के लिए ही कहा होगा। लेकिन वहाँ तो कई घर थे... इसलिए पूज्यश्री को कहा– "भाई ! इन सब घरों में तुम क्यों नहीं गए?"

"साहब ! आपकी आज्ञा एक घर जा कर वापस आ जाने की ही थी ?"

"ठीक है ! लेकिन पुनः जाओ और सभी घरों में कुछ-कुछ लाभ प्रदान कर ही आना"- पूज्यश्री ने तहत्ति कह कर तैयारी बताई और तुरन्त पातरे लेकर निकल गए। प्रत्येक के घर में प्रवेश कर व लाभ प्रदान कर वापस लौट आए।

पूज्य गुरुदेवश्री की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मध्याह्न में उन्होंने ६ से ८ किलोमीटर की पदयात्रा की और वह भी खिन्न चेहरा लेकर नहीं बल्कि प्रसन्नतापूर्वक । यहाँ याद आ रही है गौतमस्वामी की वह अप्रतिम घटना...

आनंद श्रावक को मिच्छा मि दुक्कडम देने के लिए प्रभु- महावीर ने आज्ञा दी थी और प्रातः स्मरणीय श्री गौतमस्वामीजी बिना छठ के तप का पारणा किए तुरन्त रवाना हो गए। कितनी बड़ी बात है यह ?

अपने पूज्य गुरुदेवश्री की आज्ञा को शिरोधार्य करने की पूज्यश्री की तैयारी तो थी ही। लेकिन इसके साथ ही गुरुदेवश्री की ओर से मिलने वाली डाँट के प्रति उनका विरल दृष्टिकोण किस प्रकार का था, उसे स्पष्ट करनेवाली एक और महत्वपूर्ण घटना मुझे पढ़ने को मिली।

एक बार पूज्य दादा गुरु-महाराज के पास भक्तगण बैठे हुए थे, लेकिन उस समय कुछ ऐसा निमित्त निर्मित हुआ और पूज्य दादा गुरुदेवश्री ने गुरुदेव को सख्त शब्दों में डाँट पिला दी, निजी रूप से नहीं बल्कि सार्वजनिक रूप से सब भक्तों के बीच फटकार लगाई, इससे पूज्य गुरुदेवश्री को बहुत क्षोभ हुआ। पूरे दिन चेहरा उतरा हुआ रहा। रात को जब वे सोने की तैयारी कर रहे थे, तब बैठ कर वे विचार करने लगे कि आज मुझसे कौनसी भूल हो गई (यह पूज्यश्री का दैनिक कार्यक्रम था) और उसमें पूज्य गुरुदेवश्री की फटकार और उसके कारण उन्हें जो ठेस पहुंची थी, वह याद आया।

तब वहीं उन्हें पश्चाताप होने लगा। हाय ! मैं कैसा अपात्र हूँ। पूज्य गुरुदेवश्री ने यदि मुझे कुछ कठोर शब्द कह भी दिए तो इसमें मुझे इतना बुरा क्यों लगा ? गुरुदेव तो अधिकारी हैं। यदि वे मुझे नहीं कहेंगे तो फिर कौन कहेगा ? दूसरा कौन आयेगा मुझे कहने के लिए ? यह मेरी प्रज्ञापन पात्रता की कमी ही कही जायेगी बाकी गुरुदेव श्री तो गुरुदेवश्री ही हैं। वे मुझे कुछ भी, किसी भी प्रकार से, किसी भी स्थान पर और किसी के भी सामने कह सकते हैं। इसमें भला - बुरा लगने जैसा क्या है ?

आज मुझे खराब लगा और पूरा दिन शून्यवत रहा, यह सब मेरी अपात्रता और अप्रज्ञापनीयता का ही सूचक है। यदि यह स्थिति पूज्य गुरुदेव की नज़र में आ गई तो फिर कभी भी वे मेरी भूल के बारे में बताएंगे ही नहीं। यह तो मेरे लिए फिर कितनी बड़ी जोखिम..

यह विचार करते-करते पू. गुरुदेवश्री का दिल भर आया। आंखें सजल हो गई और उसी समय पूज्यश्री ने प्रतिज्ञा की कि आज के पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री की बात का मन पर यदि खराब प्रभाव होता है तो दूसरे दिन ही मैं एकासना (दिन में एक बार ही आहार लेना) करूँगा और उसमें मैं लाल व हरी मिर्च का त्याग करूँगा और इसके अलावा खड़े-खड़े एक हजार गाथा का स्वाध्याय करूँगा.. और उसी समय पूज्यश्री ने खड़े-खड़े ही एक हजार गाथा का स्वाध्याय किया और उसके पश्चात् ही निद्राधीन हुए।

इसे कहते हैं- "गुरु की गाली है घी की नाली।"

अपने गुरुदेव के प्रति इसी प्रकार का अभिगम रखा और साथ ही अपने निजी जीवन में भी उसी प्रकार के आदर्श उन्मुख पूज्यों व साथियों को रखा ... जिनके जीवन-लक्ष्य ऊँचे और आगमज्ञानता से सराबोर थे ...

दुर्लभ उपलब्धि

पू. पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी म. पूज्य पं. कान्तिविजयजी म., पू. मुनि श्री पुण्यविजयजी

म., पू. मुनिश्री जंबूविजयजी म. आदि श्री पू. गुरुदेवश्री के लिए आगम-सम्बन्ध जैसे उत्तम प्रतिभाव रखते थे।

एक बार प्रज्ञाचक्षु पंडितवर्य श्री सुखलालजी ने भी आज की श्रमण संस्था के प्रति इंगित करते हुए कहा था कि- "साधुओं को आज कहाँ अध्ययन करना है ? आगमज्ञान के लिए हरिभद्रसूरिजी के जैसे ग्रंथों को पढ़ने की भला किस को तमन्ना है ? एक अभयसागर साधु है, जो एक पागल की तरह इनमें रचा-पचा रहता है । इसके सिवाय और कौन है ? "ऐसे पंडित के दिल में भी पू. गुरुदेवश्री ने किस प्रकार की छबि निर्मिति की थी ?

यह कहने में बिलकुल भी अतिशयोक्ति नहीं लगती है कि आगम पर पूज्य गुरुदेवश्री का प्रभुत्व उल्लेखनीय था। क्योंकि कोई भी विहार या स्थिरता में कोई आचार्यदेवादि जब मिलते तो वे पू. गुरुदेवश्री के पास आगम-वाचना की अपेक्षा तो रखते ही थे। इसकी जानकारी तो मुझे भी है।

पिंडवाड़ा में संवत् २०२० में वात्सल्यसिंधु पूज्य आचार्यदेव श्री विजयप्रेमसूरीश्वरजी म. और पूज्य आचार्यदेव श्री यशोदेवसूरि म. आदि का बड़ा मुनि समुदाय वहाँ था और हम वहाँ पहुँचे। वहाँ एक ही दिन रुकना था, लेकिन फिर भी आचार्यदेवश्री ने पू. गुरुदेवश्री को वाचना देने का आदेश दिया। दुपहर में यह वाचना आयोजित हुई और उसमें पूज्य भानुविजयजी म. (आ. श्री भुवनभानुसूरि म.), पू. मुनि श्री चन्द्रशेखर वि. म. आदि कई मुनि उपस्थित थे। पूज्य गुरुदेवश्रीने तब बहुत सुन्दर वाचना दी। यह मेरी स्मृति में है। गिहिजोगं परिवज्जए अर्थात साधुओं को वैसे साधन नहीं रखने चाहिए जैसे कि गृहस्थ रखते हैं, इस तथ्य को उन्होंने अधिक स्पष्ट किया और कई पूज्यों ने तब यह प्रण लिया कि वे प्लास्टिक के बने सामान का उपयोग नहीं करेंगे।

संवत् २०२५ में एक बार पू. गुरुदेवश्री को अहमदाबाद ज्ञानमंदिर में किसी कारणवश जाना पड़ा और तब साथ में पू. जिनचन्द्रसागरजी म. भी थे।

ऊपर हॉल में जब पूज्यश्री पधारे, उस समय पू. आ.दे. श्री मुक्तिचन्द्रसूरि म., पू. आ.दे. श्री कलापूर्णसूरि म. आदि साथ में किसी ग्रंथ का वाचन कर रहे थे। किसी बात पर संशय उत्पन्न हुआ था और उससे सम्बन्धित चर्चा जारी थी। लेकिन वहाँ जैसे ही पूज्यश्री पहुँच कि वहाँ उपस्थित सभी पूज्य खड़े हो गए और पू. गुरुदेवश्री को आदर के साथ बोले-ओह, अब तो अभयसागरजी आ गए हैं। इस संशय का समाधान हमें अब मिल ही जायगा। चलो, उनसे ही पूछते हैं।

पूज्यश्री की यह कितनी सुन्दर छबि है।

इसी प्रकार पूज्य गच्छाधिपति श्री माणिक्यसागरसूरि म., पू.आ. विजयमुक्तिचंद्रसूरि म., पूज्य गच्छाधिपति श्री देवेन्द्रसागरसूरि म. के अतिरिक्त कई पूज्य वाचना के लिए पू. गुरुदेवश्री से अपेक्षा रखते थे।

विरल वाचनादान

वाचना देने वाले तो कई होते हैं, लेकिन शब्द का अर्थ करना एक अलग बात है। भावार्थ करना अलग विषय है और उसके अन्दर समाए गहन रहस्य को उजागर करना एक अलग ही बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री की वाचना में वह रहस्य था। आगम के अध्यायों के एक-एक शब्द के अर्थ का पता लगा कर उसके भीतरी रहस्य तक पहुंचना पू. गुरुदेवश्री की खूबी थी और यह कथन मेरे-आपके जैसे लोगों का नहीं है, बल्कि तृतीयपद पर आरूढ़ महापुरुषों का अभिप्राय है। यह ज़िस समय लिखा जा रहा है, तब जिन्हें सबसे बड़ा दीक्षा पर्याय और आचार्यपद का पर्याय माना जाता है, उन आचार्यदेव ने भी सूरत में बताया कि व्याख्यान की शैली में आगे निकलने वाले तो कई हैं, लेकिन वाचना की शैली में तो एक ही विभूति है (अभयसागरजी) और वे निः संदेह अद्वितीय हैं।

वेजलपुर में, अहमदाबाद में, पाटण में और छाणी में जो वाचनाएँ हुई उन्हें सिर्फ एक ही शब्द 'अद्‌भुत' का विशेषण दिया जा सकता है। वाचना

सुनने के लिए अच्छे-अच्छे आचार्यदेव वहाँ आते थे। वाचना का नाम सुनते ही अनेक साधु और साध्वीजी, भगवंत सैंकड़ों की संख्या में उपस्थित हो जाते थे। उस समय मत-मतान्तार, पक्ष-विपक्ष की दीवारें स्वतः ही गिर जाती थीं। ऐसा लगता था मानों आगमिक पदार्थ पूज्यश्री की जीभ पर खेलता हो..

ऐसा होगा ही! किस प्रकार का पूज्य गुरुदेवश्री का स्वाध्यायबल है ? पूरे पैंतालीस आगमों का स्वाध्याय गुरुदेवश्रीने एक बार नहीं, कई बार किया था। फिर बाकी क्या रह जाता है ?

विरल व्यक्तित्व

संस्कृत-प्राकृत भाषा पर भी नियन्त्रण किस प्रकार का था ? अहमदाबाद के महाविद्यालय में पूज्य गुरुदेवश्री का प्रवचन आयोजित किया गया था और वहाँ सबने मांग की कि प्रवचन यदि संस्कृत में दिया जाय, तो ठीक रहेगा और तब पूज्य गुरुदेवश्रीने अनूठी छटा में धाराप्रवाह रूप से प्रवचन दिया पूरे पचहत्तर मिनिट तक। सुनने वाले सभी दंग रह गए थे।

पाली राजस्थान में पू. आ. श्री कैलाससागरसूरि म. आदि बिराजमान थे। वहाँ आचार्य तुलसी के शिष्य नगराजजी उपाश्रय में मिलने के लिए आए और संस्कृत में गद्य-पद्य में सगर्व वार्तालाप करने लगे। पूज्य गुरुदेवश्री बाहर गए थे, इसलिए कुछ देर के बाद पधारे। तब तक नगराजजी के साथ बोलनेवाला कोई ऐसा नहीं था, जो उनके साथ साम्यता रखता हो, लेकिन जैसे ही पूज्य गुरुदेवश्री ने आकर वार्तालाप आरंभ किया... सब अवाक् हो गए और तब नगराजजीने संस्कृत भाषा में वार्ता बंद कर हिन्दी भाषा में शुरु कर दी।

प्राकृत भाषा पर भी पूज्यश्री की अद्‌भुत पकड़ थी।

हमें जब-जब पाठ या वाचना देते, तब प्रायः माध्यम संस्कृत ही रखते थे और हमें भी उसके लिए ही अभ्यस्त रहने के लिए कहते थे। अरे! कई बार तो पत्रव्यवहार भी संस्कृत में ही होता था...

पूज्यश्री मुझे कई बार कहते थे कि गुजराती की

अपेक्षा संस्कृत- में लिखने की आदत डालो। यह भाषा चिरंजीवी है और घर की है। लेकिन मैं मेरी कमी को आज तक दूर नहीं कर सका। इसका मुझे बेहद दुःख है।

इतना सब होने पर भी पूज्य श्री अपनी संशोधनवृत्ति में सदैव कार्यशील रहते थे। जहाँ भी जाते वहाँ उनकी चकोर नज़रें आसपास कुछ न कुछ नया खोजती ही रहती थी।

अपने पू. गुरुदेव श्री धर्मसागरजी म. के साथ कई बार उन्हें मालवा, मेवाड़ और राजस्थान जाना पड़ा।

क्योंकि पू. धर्मसागरजी म. का यह सिद्धान्त था कि जहाँ साधु-साध्वियों का विहारकम हो और जिस प्रदेशकी प्रजा अबोध-अबूझ हो, वहाँ विशेष विहार होना चाहिए।

निश्चित ही यह बहुत कठिन और जटिल कार्य कहा जायगा ! उस समय के मालवा प्रवेश का तो कहना ही क्या ? साधुओं के लिए तो कठिनाईयों से भरा क्षेत्र...! दुर्गम विहार और साधुओं से तो लोग अपरिचित और स्थानकवासियों से पूर्णतः परिचित। गोचरी-पानी आदि भी गुजरात जैसी (नरम/मीठी) नहीं। उन लोगों का खाना भी मोटा और फिर व्यवहार में पूरे अनिभज्ञ। परमात्मा की पूजा नहीं और दर्शक वर्ग भी दुर्लभ... ! ऐसे प्रदेश में विचरना वह उनका ही काम था और साथ ही व्यवस्थाएँ अपने साथ नहीं होती थीं। पूर्णतः सुविशुद्ध चरित्र-पालन के साथ विचरण करना। न कोई ठेलागाड़ी और न कोई पोटली। अरे ! साथ में कोई इंसान भी नहीं। अकेले ही विहार करना अतिदुष्कर कार्य ही कहना होगा, लेकिन इस गुरु-शिष्य की जोड़ी का इसमें ही मजा रहा।

आदर्श तीर्थयात्रा

अरे ! यह तो मालवा विहार की चर्चा हुई। लेकिन गुरु-शिष्य की इस जोड़ी ने श्रीशिखरजी तीर्थ की जो यात्रा की थी, उसके बारे में वर्णन सुने तो ऐसी विरल आत्माओं के समक्ष खुद-ब-खुद ही सिर झुक

जाता है। उस वक्त तो विरल साधु ही विहार करते थे और वह भी बिना व्यवस्था के नहीं ! क्योंकि सेकड़ों मील तक और कोई जैन मन्दिर भी नहीं और न ही किसी श्रावक का घर आता था। इसलिए नागपुर–कानपुर आदि नगरों के श्रावक ही पू. साधुओं व साध्वियों की व्यवस्था संभालते थे। ठेलागाड़ी और दूसरे साधनों के साथ किसी सेवक की व्यवस्था भी वे कर देते थे, साथ ही वस्तुएँ सामान आदि भी भर कर देते थे। जिससे वह मनुष्य आहार आदि की व्यवस्था कर सके।

पूज्यश्री ने भी नागपुर से विहार किया। श्रावकों ने व्यवस्था की बात की। लेकिन पूज्यश्री ने पूरी तरह इंकार कर दिया और कहा कि उन्हें कोई व्यवस्था नहीं चाहिए। लेकिन फिर भी नागपुर के श्रीसंघ ने एक होशियार आदमी उनके साथ जबरदस्ती भेजा।

लेकिन इन पूज्यों की तो शैली ही अलग प्रकार की रही।

प्रदेश विचित्र, इसलिए लम्बे विहार तो करने ही पड़ते थे। ऐसे लम्बे विहार करने के बाद जिस गाँव पहुँचते थे, वहाँ फिर रुकने के स्थान की शोध करना होती थी। वहाँ पर रिवाज था कि जो घर महाजन के होते थे उनके मकान पर लाभ–शुभ लिखा होता था। इसलिए जहाँ लाभ–शुभ लिखा होता था वहाँ जा कर रुकने की जगह के लिए याचना करना होती थी। जगह मिलती फिर उपधि (साधुओं के आवश्यक सामान का थैला) खोलते। गाँव के लोग जैन साधुओं से अपरिचित होते थे और ऐसे साधु वहाँ आश्चर्य के रूप में देखे जाते और लोग एकत्रित होने लगते थे और तब पूज्य गुरुदेवश्री उपधि खोलते और काजा (उपाश्रय आदि को साफ करने का उपकरण) आदि लेकर आसन जमाते और लोगों को कहते थे– "बोलो, कथा सुनना है ?" लोग हाँ कह देते और फिर सबको बैठने का कह कर पूज्य गुरुदेव कोई वार्ता कहते। वार्ता पूरी होती और खड़े हुए लोग एक–दो पैसे डालने लगते, तब गुरुदेव समझाते कि वे पैसे को नहीं छू सकते हैं। तब सामने से सवाल किया जाता कि

फिर आपके भोजन-पानी का इंतजाम कैसे होता है? उसके जवाब में गुरुदेवश्री जैन साधु की भूमिका समझाते। कई लोग भोजन का आग्रह करते, लेकिन जब वे उस प्रथा के लिए भी इंकार करते तो लोग जैन साधु से इतने प्रभावित हो जाते कि उसका वर्णन करना कठिन है। फिर गुरुदेवश्री गोचरी के लिए घूमते थे और उसमें कुछ मिल जाता था। ऐसे गाँव में और ऐसे गैर-जैन घरों में साधु के लिए कितनी उचित गोचरी मिलती होगी? इसकी कल्पना ही की जा सकती है। ऐसी गोचरी से दोनों एकासना (दिन में एक बार आहार) कर लेते थे और दूसरे दिन विहार के पश्चात् किसी अन्य गाँव में। वहाँ फिर वही उपरोक्त बातों का पुनरावर्तन।

इस प्रकार शिखरजी गए, तब तक वैसी ही स्थिति। साथ गया आदमी एक सप्ताह में ही नागपुर लौट गया और नागपुर के अग्रणियों को उसने जब इन दो संतों का वर्णन सुनाया तो सुनने वालों की आँखे छलछला आई। वह आदमी जैसा गया था वैसा ही वापस लौटा। मानो स्वयं ही दो व्यक्ति हैं। अपने साथ कोई तीसरा व्यक्ति है ही नहीं, इस प्रकार का व्यवहार इन महासंतों ने किया।

आज हम जैसों को तो इस प्रकार का आचरण करना तो ठीक, इस प्रकार का विचार करना भी महाकठिन लगता है। यह कलिकाल का आश्चर्य नहीं तो फिर इसे क्या कहेंगे? विहार करने वाले को मालूम होता है कि बीस किलोमीटर चलने के पश्चात् इस प्रकार की उन सब प्रवृत्तियों, को करना कितना मुश्किल होता है? इस प्रकार के आदर्श पूज्य गुरुदेवश्री ने इस युग में प्रस्तुत किए हैं, जो हमारे लिए किसी सौभाग्य से कम नहीं है।

आरा में ज्ञानधारा

ऐसी कठिनयात्रा में भी पूज्य गुरुदेवश्री की संयमशीलता व ज्ञाननिष्ठा कितनी अदुभुत और अपूर्व रहती थी? सुना हुआ एक किस्सा इस समय यहाँ याद आ रहा है।

बिहार राज्य के आरा नगर में पूज्यश्री पधारे थे। शासन के किसी जरूरी कार्य के कारण उग्र विहार चल रहा था। रोज तीस–पैंतीस किलोमीटर का विहार हो जाता था.. शरीर की कोई चिंता नहीं और न ही कोई व्यवस्था रहती। आरा की एक धर्मशाला जिसका नाम मैनासुन्दरी था, उसमें ये ठहरे। उस दिन दोनों को ही था उपवास.. क्योंकि दोनों का चल रहा था वरसीतप ....।

आरा नगर में दिगंबरों की आबादी विशेष रूप में अधिक है। श्वेंताम्बरों के तो वहाँ कुछ ही परिवार थे। उसमें भंवरलालजी नामक एक श्रावक भी रहते थे। उन्हें जब मालूम हुआ कि अपने कोई श्वेताम्बर मुनि आरा में पधारे हैं, इसलिए वे वंदन करने के लिए मैनासुंदरी धर्मशाला पहुँचे.. वहाँ जा कर देखा तो पाया कि दोनों मुनिराज निद्राधीन हैं। वंदन करने के पश्चात् भी जब दोनों मुनियों में से कोई भी नहीं उठा, तब भंवरलालजी ने उनके चरणस्पर्श किए.. उस वक्त उन्हें मालूम हुआ कि दोनों मुनिराज बुखार से ग्रस्त हे। भंवरलालजी ने पूज्यश्री से पूछा...

''बापजी ! आप दोनों को बुखार है ?''

''हाँ, है तो सही...''

''तो डॉक्टर बुलाऊँ....''

''नहीं कोई जरूरत नहीं''

''क्यों बापजी इतना बुखार है न ? डॉक्टर तो बुलाना पड़ेगा''

''नहीं श्रावकजी, मत बुलाना''

''तो बापजी बुखार की दवाई लाऊँ''

''नहीं।''

''क्यों, दवाई भी नहीं? बुखार है, फिर भी दवाई क्यों नहीं''

''नहीं, श्रावकजी, दवाई भी मत लाना''

''तो बापजी, गोचरी के लिए तो पधारो''

''श्रावकजी, हम दोनों को उपवास है, अतः गोचरी

का तो कोई सवाल ही नहीं।''

''तो कल प्रातः अवश्य ही पारणे का लाभ देना...''

आग्रह करने पर जवाब मिला कि-

''हम तो शाम को ही विहार करने वाले हैं।''

''अरे ! बापजी यह क्या कह रहे हैं, इतना बुखार, फिर भी शाम को विहार ?''

''बुखार तो कुछ समय के बाद उतर जायेगा''

भंवरलाल ने बहुत आग्रह किया, लेकिन वे अपने निर्णय से विचलित नहीं हुए... इसलिए सायंकाल विहार के समय भंवरलालजी फिर हाजिर हो गए... दोनों पूज्य बुखार से मुक्ति पा चुके थे और विहार की तैयारी कर रहे थे... भंवरलालजी ने आ कर चर्चा की..

''गुरुदेव ! आप विहार कर रहे हैं लेकिन यह अच्छी बात नहीं हो रही है।''

''श्रावकजी ! आपका कथन सही है, परन्तु हमें कारणवश जल्दी पहुंचना है।''

''बापजी ! पहले ही यहाँ श्वेताम्बर साधु पधारते ही नहीं और जब पधारते भी हैं तो साल में एक-दो बार और उसमें भी आप की इतनी जल्दबाजी...''

''यहाँ दिगम्बर साधु तो पधारते ही होंगे ?''

''हाँ गुरुदेव, उनके साधु तो आए दिन पधारते ही रहते हैं, क्योंकि यहाँ उनकी बड़ी आबादी है ! उनके घर भी अधिक हैं और मन्दिर भी बड़ी तादाद में हैं ! अतः वे आते रहते हैं !''

''अपना कुछ भी नहीं है क्या ?''

''था, गुरुदेव, आज तो कुछ भी नहीं, सिवा हम लोगों के !''

''अपनी तो कोई इमारत भी नहीं ?''

''इमारत है ज्ञानभंडार की... यह बहुत बड़ी और विशाल है''

"खाली है या कुछ पुस्तकें भी हैं ?"

"अरे ! बापजी खाली नहीं, वहाँ ढेरों पुस्तके हैं और उसमें भी हस्तलिखित विशेष रूप से । विद्वान लोग कहते हैं कि उनमें पाँच-पांच हजार वर्ष पुरानी पुस्तकें भी हैं।"

"क्या बात करते है। श्रावकजी ?" आश्चर्य के साथ पूज्य गुरुदेवश्री ने पूछा।"

"जी हाँ ! गुरुदेव !"

"कितनी दूर है यहाँ से ?"

"थोडी दूर ?"

यह सुन उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री से आज्ञा प्राप्त की और ज्ञानभंडार देखने के लिए गए... ज्ञानभंडार की मात्र सूची देखी और पू. गुरुदेवश्री को अहसास हो गया कि ज्ञानभंडार बहुत विशाल है। ठीक है, विहार कुछ दिनों के बाद, लेकिन इन ग्रंथरत्नों को देखे बगैर भी कैसे रहा जा सकता है ? पूज्य गुरुदेव के पास पहुँच कर उन्हें पूरी जानकारी दी । पू. गुरुदेवश्री ने अपनी मंजूरी दे दी.. बस उसके बाद तो उनका बस एक ही मुकाम रहता था मात्र भंडार.. गोचरी-पानी से निवृत्त होते और सीधे पहुँच जाते भंडार पर ! एक दिन का विहार रोकने के लिए इंकार करने वाले वे गुरुदेव तीन दिनों तक आरा नगर में रुके.. तीन दिनों में लगभग पूरे भंडार का निरीक्षण कर लिया और जो भी महत्वपूर्ण मालूम हुआ, उसे डायरी में दर्ज कर लिया.. चालू यात्रा में भी ज्ञानपिपासा कितनी तीव्र थी? यह घटना उसका आभास देती है।

अंत में पूरा भंडार गहराई से देखने के बाद प्रातः विहार के लिए निकले । बीस किलोमीटर का वह विहार होगा। उस दिन उन दोनों पूज्यों के उपवास का पारणा था और विहार कर वे ट्युनिगंज स्टेशन पर पधारे, लेकिन वहाँ जैनों का एक भी घर नहीं था और इस बात की जानकारी भंवरलालजी को थी, इसलिए उन्होंने पारणा योग्य रसोई बनाई और टिफिन में भर कर अपने छोटे भाई अमृतलालजी को भक्ति के लिए भेजा।

अमृतलाल उस गाँव पहुँचे, उसके पहले दोनों पूज्यश्री पधार गए थे और उसमें पूज्य गुरुदेवश्री तो गोचरी के लिए चले गए थे उनके पास जा कर अमृतलाल ने कहा :

"बापजी, मैं आरा से आ रहा हूँ।"

"किसने भेजा है तुम्हें ?"

"भंवरलालजी ने"

"क्यों ?"

"आपके लिए उन्होंने आहार–पानी का टिफिन भेजा है।"

"परन्तु यह हम नहीं लेंगे।"

"क्यों ?"

"हमारे लिए जो चीज बनाई जाती है, उसे हम स्वीकार नहीं कर सकते।"

"लेकिन बड़े भाई ने तो मुझे भेजा है न ?"

"परन्तु हमारा तो यही नियम है।"

"तो में इस (टिफिन) का क्या करुँ ?"

"जो आप ठीक समझें।"

काफी आग्रह करने पर भी सफलता न मिलि तब अन्त में पूज्यश्री के आधार–नियमों से प्रभावित हो कर अमृतलाल ने उनको वंदन किया और वहाँ से रवाना हुए। पू. गुरुदेवश्री गोचरी लेकर आए। गोचरी में मात्र छाछ और सूखी रोटियाँ ही उन्हें मिली थी... उनका उपयोग कर ही उपवास का पारणा किया। लेकिन दूषित आहार–पानी तो उन्होंने फिर भी नहीं लिया...

इस घटना के पश्चात् हम जब सूरत से शिखरजी का संघ लेकर आरा गाँव गए, तब भंवरलालजीने हमें आरा में पधारने का आग्रह किया।

"आप मेरे गुरुदेव के शिष्य हैं ! तो आपको अवश्य ही पधारना होगा।" तब हमने गुरुदेव श्री के सम्बन्धमें जब पूछताछ की तब भंवरलालजी ने उपरोक्त किस्सा सजल नयनों के साथ सुनाया। यह सुन कर हमारी आंखें भी अश्रुमय हो गई...

कितनी अद्‌भुत है यह ज्ञानसाधना और संयम उपासना... ? इसी प्रकार की कठिनाई पूज्यश्री ने मालव-प्रदेश में भी अनुभव की..

मालवोद्धारक

पूज्य गुरुदेवश्री ने मालवा में भी कई कठिन विहार किए हैं। मालवा में पूज्य गुरुदेवश्री ने लगभग अठारह वर्षों तक विचरण किया है। मालवा-मेवाड़ का शायद ही कोई गाँव ऐसा होगा, जहाँ इन पूज्यों ने पदार्पण न किया हो।

और वह भी किन जटिल परिस्थितियों में ? हम बोलिया गाँव गए और वहाँ प्राण-प्रतिष्ठा थी, इसलिए करीब पन्द्रह दिन वहाँ रूके थे । तब वहाँ के कचोलिया परिवार के वृद्ध ने हमें बताया।

''बापजी ! आपके दादागुरुजी, यहाँ पधारे थे और करीब बीस दिन रूके थे।''

इसलिए हमने पूछा -

''कहाँ रूके थे ? उस वक्त क्या उपाश्रय था ?''

''नहीं बापजी ! उपाश्रय की व्यवस्था तो अभी कुछ वर्ष पूर्व ही हुई है, उस समय तो एक छोटे से मकान में वे ठहरे थे।''

इसके पश्चात् उस वृद्ध ने हमें वह मकान बताया... ऊपर नलिए, नीचे लीपा हुआ.... साथ ही वह इतना नीचा कि यदि प्रवेश करते समय ध्यान न रखें तो सिर टकरा जाय।

हम सोचने लगे.. ऐसे मकान में पूज्यश्री किस प्रकार बीस दिन रहे होंगे ?

लेकिन बस, एक मात्र उद्देश्य कि लोग व्याख्यान आदि के द्वारा धर्मबोध प्राप्त करें... धर्मप्रवृत्ति करें और उसके द्वारा उनका जीवन सफल हो और साथ ही जिनमंदिर आदि की जो उपेक्षा होती है, वह बंद हो।

पूज्यश्री ने ऐसी कई कष्टप्रद स्थितियों को अनुभव किया है।

ऐसे विकट प्रांत में रह कर पूज्यों ने वाणी के प्रपात और प्रेरणा की प्याऊ से लोगों को वीर-वाणी का जल पिला कर जागृत किया है, दर्शन करने के लिए प्रोत्साहित किया है और पूजन करना सिखाया है।

इन्दौर में स्थापित जैन श्वेताम्बर पेढ़ी के माध्यम से डेढ़ सौ मंदिर जो अत्यन्त जीर्ण व जर्जर स्थिति में थे, उनका जीर्णोद्धार करवाया ।

अतिप्राचीन तीर्थ जो मानों पाताल में ही चले गए थे, उन्हें भारी पुरुषार्थ के माध्यम से बाहर लाया गया। उपधान, नवपद की ओली के अनुष्ठानों के द्वारा इन तीर्थों में मनुष्यों का जमघट वे ऐसा जमाते, जिससे तीर्थ की आबादी व उसकी उन्नति दोनों में वृद्धि होती।

मालवा के प्रसिद्ध प्रमुख सभी तीर्थ श्री अमीझरा, श्री भोपावर, श्री मांडवगढ़, श्री मक्सीजी, श्री परासली, श्री वई पार्श्वनाथ, श्री बिबड़ौद तीर्थ और आज जिसकी रौनक व चमक से पूरा भारत आकर्षित हो रहा है, उस श्रीनागेश्वर तीर्थ को प्रकाशित करनेवाले ये ही महापुरुष हैं।

नागेश्वर की नवरचना

इनमें भी नागेश्वर की गाथा तो अत्यन्त अलौकिक, चमत्कारी और अद्‌भुत प्रतीत होती है।

आज से चालीस वर्ष पूर्व इन दोनों पूज्यों ने इस ओर विचरण किया और तब उन्हें नागेश्वर की जानकारी मिली।

उस समय नागेश्वर का नाम मात्र उन्हेल की बावड़ियों, तालाब व कुएँ के शिलालेख तक ही सीमित था। उन्हेल गाँव के अलावा वहाँ कोई बस्ती नहीं थी। उन्हेल गाँव से कुछ दूर घनघोर जंगल में एक टूटे फूटे मकान के गुम्बज के नीचे नागेश्वर दादा खड़े हुए थे और दादा की हालत बिगड़ी हुई और साथ ही उपेक्षा और अपमान की तो कोई सीमा ही नहीं। लोग उन्हें नागा बाबा के नाम से ही जानते और पूजते थे।

एक बाबा ने इस मन्दिर पर कब्जा किया हुआ

था और दादा के नाम पर वह लोगों पर जंतर-मंतर करता। लोग दादा के चरणों में नहीं करने के कार्य करते।

दादा की इस हालत को देख कर पूज्यों के दिल में दर्द उभरा। शोध के द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री ने निर्णय किया कि ये दादा हैं तो अपने ही। इसलिए उस बाबा के कब्जे में से अपने पास लेने के लिऐ जहमत बहुत उठानी होगी। बहुत प्रयत्न करने के बाद भी बाबा माना नहीं और अन्त में श्रावकों ने अदालत में मुकदमा दायर किया। अठारह वर्षों तक प्रकरण अदालत में चलता रहा और अंत में परिणाम आया और वह मन्दिर स्थान अपना हो गया।

मन्दिर का कब्जा तो मिल गया, लेकिन पूज्यश्री के गुजरात आने से काम ठंडा पड़ गया और मन्दिर यथास्थिति में ही रहा।

लेकिन संवत् २०२३ में पूज्य गुरुदेवश्री वहाँ पधारे। सौभाग्य से हमें भी साथ रहने का मौका मिला। दादा के सर्वप्रथम दर्शन का लाभ हमें तब मिला। लेकिन हालत ऐसी कि दादा को हाथ जोड़ने की इच्छा भी न हो। ऐसी स्थिति में दादा हो नहीं सकते ऐसा ही लगता था। भयावह धरती के कारण कितने ही अवरोध तब दादा के पास पहुँचे और बाप रे। सांप? सांप तो कदम-कदम पर दिखाई दे जाते थे, इतने थे।

उस वक्त हम तीन दिन रहे। पू. गुरुदेवश्री के दिल में दादा के प्रति श्रद्धा निर्मित हो गई थी और उनका संकल्प था कि येनकेन किसी भी तरह इस स्थान को जागृत करना है। लेकिन उस समय गाँव बिलकुल अपरिचित। वहाँ किसी साधु का आना-जाना नहीं, फिर भी तीन दिन रहे। पूज्य गुरुदेवश्री ने महसूस किया कि जब तक गाँव का साथ-सहयोग नहीं मिले, तब तक कार्यसिद्धि असंभव है और गाँव का साथ प्राप्त करने के लिए गाँव के लोगों को एकत्रित करना होगा। इसके लिए रात में बस्ती में प्रचार करवाते कि "हम भजन कथा सुनाएँगे" और इस तरह लोगों को इकट्ठा करते। तब मान्यवर बंधु पूज्य जिनचन्द्रसागरजी म. से विविध-प्रकार के पद

बुलवाते और पूज्यश्री वर्णन करते और उसके अन्तर्गत इस तीर्थ की महिमा बताते और साथ ही अपील करते कि यदि आपका साथ-सहयोग मिले तो यह एक तीर्थधाम बन सकता है। इसके द्वारा आपका गाँव और आबाद हो जायगा।

इस प्रकार गोचरी-पानी की बेहद तकलीफ रहने के बाद भी तीन दिन रह कर वहाँ लोकसंपर्क साधा गया। फिर कार्यवाही बढ़ाने का तय किया। लेकिन आर्थिक आधार किस प्रकार मजबूत बनाया जाय? यह एक समस्या थी। इसके लिए सेठ श्री कस्तूरभाई लालभाई आदि से संपर्क किया गया और जी तोड़ प्रयास के बाद आर्थिक कोष निर्मित किया, काम आगे बढ़ाया गया।

प्रारंभ में तो उद्देश्य इतना ही था कि एक छोटा हाल बन कर लेप के द्वारा प्रतिमाजी की सुरक्षा को बनाए रखा जाय ... तद्नुसार तीन वर्षों में काम पूरा हुआ। फिर संवत् २०२६ वैशाख कृष्ण पक्ष दशमी को हजारों व्यक्तियों की उपस्थिति में पूरी भव्यता के साथ पूज्य गुरुदेवश्री ने दादा की इतनी अद्भुत व गरिमामय विधि के द्वारा प्रतिष्ठा कराई, जो अन्यत्र शायद ही कहीं देखने को मिले। बस उसके पश्चात् तो यह तीर्थ समस्त भारत में यह आकर्षण का केन्द्र बनता जा रहा है।

वासक्षेप की भस्म ने कोई अद्भुत संचार किया कि तीर्थ की रौनक फिर बढ़ने लगी। फिर तो जहाँ हॉल है, उसके स्थान पर एक भव्य मन्दिर बनाने के लिए पूज्यश्री को स्वप्न आया, इसलिए नागेश्वर तीर्थ को लक्ष्य में रख कर उन्होंने इक्कीस दिनों की आराधना की। इसके फलस्वरूप उन्होंने वैसा ही मन्दिर बनाने का निर्णय लिया, जैसा उन्होंने स्वप्न में देखा था। इसके लिए विभिन्न शिल्पियों ने अपनी-अपनी कल्पनाएँ जाहिर की, लेकिन मनपसन्द एक भी नहीं थी।

योग इतना प्रभावी था कि एक ओर पूज्य गुरुदेवश्री को स्वप्न आया और दूसरी ओर एक मिस्त्री जवाहरलाल को स्वप्न आया। मिस्त्री ने कभी

भी पूज्य गुरुदेवश्री को देखा नहीं था फिर भी गुरुदेवश्री स्वप्न में आए और तीर्थोद्धार के लिए संकेत किया।

मिस्त्री ढूंढ रहा था कि स्वप्न में आए गुरुदेव कौन हैं ? पूज्य गुरुदेवश्री भी उस मिस्त्री की खोज में थे, जो उनकी कल्पना के अनुसार का मन्दिर बना सके। फिर अचानक योग बन गया। सर्वप्रथम पौष दशमी की समूह आराधना कराने के लिए पूज्यश्री नागेश्वर पधारे। वहीं मिस्त्री ने पूज्य गुरुदेवश्री को देखा और अत्यन्त भावविभोर हो गया। दोनों मिले और मन्दिर का प्लान बनाया। यह प्लान वैसा ही था, जैसा पूज्य गुरुदेवश्री चाहते थे। तद्नुसार भव्य जिनालय निर्मित हो गया। इस पर आज चार नहीं चौदह चन्द्रमा चमक रहे हैं। (इसका वास्तविक वर्णन अत्यन्त चमत्कारिक और विस्तृत है, यहाँ तो प्रस्तुति संक्षेप में ही दी गई है)।

कहने का आशय यह है कि मालवा में इस प्रकार विचरण कर उन्होंने मानों मालवा की कायापलट कर दी। संस्कार सिंचन के लिए डेढ़ सौ गाँवों में पाठशालाएँ स्थापित की और तप का मार्ग प्रशस्त करने के लिए अस्सी से भी अधिक आयंबिल शालाएँ स्थापित कीं।

मालवा की धरती प्राचीन व ऐतिहासिक तो है ही। इसीलिए विहारों के दौरान पूज्य गुरुदेवश्री की संशोधनवृत्ति भी बहुत विकसित हुई।

बेधक दृष्टि

पूज्य गुरुदेवश्री जहाँ–जहाँ भी पधारते, वहाँ वे गोचरी–पानी आदि प्रवृत्ति से निवृत्त हो कर तलाश करते कि यहाँ कुछ ज्ञान भंडार अथवा जानने जैसा कुछ है क्या ? ऐसा यदि कुछ मिल जाता तो वे उसके लिए जी–जान लगा देते।

ज्ञान भंडार यदि अव्यवस्थित होता तो उसे सुन्दर व सुव्यवस्थित बना देते, जिससे वह लोकोपयोगी हो जाता और यदि कोई दर्शनीय स्थल होता तो वे वहाँ पहुँच जाते और अपने ढंग से सुधार

कार्य करते। कहीं कोने में कचरे को पलटते रहते और उसमें से ऐसी-ऐसी हस्तलिखित प्रतियाँ उन्हें मिल जातीं थीं, जो संघों के लिए कूड़ेदान के कबाड़े से अधिक नहीं होती थीं, लेकिन पूज्यश्री को तो मानो रत्न मिल जाता और फिर उनके पठन-पाठन के द्वारा उन्हें नई-नई शोध उपलब्धियाँ हासिल होती। इससे उन्हें नए मार्ग, संकेत, तत्व और जानकारियाँ मिलतीं।

श्री सीमंधर शोभा तरंग जैसे अमूल्य ग्रंथ

गौतमस्वामी का पूर्वजन्म

बादशाह अकबर का पूर्वजन्म

जवाहरलाल नेहरु का पूर्वजन्म

अत्यन्त ही उत्तम कोटि के पदार्थों से वासक्षेप बना कर उसे अभिमंत्रित करने की कोई अद्‌भुत विधि थी, जो आज कहीं देखने को नहीं मिलती है।

"चत्तारि मंगलम्" का जो जगजाहिर पाठ है, वह सूत्र बहुत प्रभावी व महिमायुक्त है। यह मात्र सूत्र ही नहीं, बाल्कि महामंत्रों के समीकरण से उत्पन्न एक दिव्य तत्व है। इसकी साधना, उसकी आम्नाओं आदि की उन्होंने मात्र शोध ही नहीं की है, उसे उन्होंने जीवन में पूरी सक्रियता के साथ अनुभव भी किया है।

श्री नमस्कार - महामंत्र का पूजन पूरी दुनिया में मात्र पूज्य गुरुदेवश्री के अतिरिक्त कोई सिखा नहीं सकता था। वह पूजन इतना अलौकिक और दिव्य था कि कई विधिकारकों ने पूज्यश्री से बहुत आग्रह किया कि उन्हें भी वह विधि बताई जाय लेकिन पूज्यश्री को कोई योग्य पात्र न मिला।

अंत में पूज्य गुरुदेवश्री बताते थे कि वह किसी अपात्र के हाथ में नहीं चला जाय, इसके लिए उसका उन्होंने विसर्जन कर दिया।

इसके अतिरिक्त कई प्रकार के मंत्र-तंत्र, यंत्र व ज्योतिष की मौलिक जानकारियाँ जड़ी-बूटियाँ, औषधियों साथ ही आगम-निगम की अद्‌भुत बातें पूज्यश्री के संशोधन की ही उपलब्धियाँ थीं।

लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण बात थी गंभीरता

की। कोई भी जानकारी जो उन्हें प्राप्त होती, वे उसे अपने अन्दर संग्रहित रखते थे। कौन सी बात उजागर करनी है और कौन सी गुप्त रखनी है ? इसे परखने का कौशल्य उनमें था।

उन्हें मात्र जैनों की विधियों या पद्धतियों की ही जानकारी नहीं थी, बल्कि गैर-अजैनों के विधि-विधान की भी गहन जानकारी पूज्यश्री को थी। यह कैसे मालूम हो ? कोई घटना घटे और तब पूज्यश्री प्रयोग दर्शाएँ, तब उसकी जानकारी मिलती थी।

पूज्यश्री पाटण से चारुप पधार रहे थे वहाँ बीच में एक गाँव पारडी के जलेश्वरजी के मन्दिर में रुके तब चारुप के मुख्य ट्रस्टी अरविन्दभाई झवेरी और चारुप के पुजारी रणजीतभाई साथ में थे। यह तो हाल ही की अर्थात संवत् २०४१ की बात है? उस समय उस मन्दिर में कोई पूजाविधि या यज्ञ जैसा कुछ चल रहा था। बाहर से आए पंडित तेज आवाज़ में वेदोच्चार कर रहे थे और विधि-विधान पूरे कर रहे थे। पूज्यश्री को ऐसे मामलों में अत्यधिक रुचि रहती थी। इसलिए पूरी तरह ध्यान देकर वे वेदोच्चार को सुनने लगे... आघा, पौना घंटा हो गया और तब पूज्यश्री उठे और विधि कराने वाले के पास पहुँच और उनसे कहा- "श्रीमान् फलां वेद की ऋचाओं को बोलते हो ?"

"हाँ" सामने से जवाब मिला!

लेकिन श्रीमान् ! आप इनका उच्चारण जैसा करते हैं, वह वैसा नहीं है। इसका उच्चारण तो इस प्रकार होगा और अपने हाथ की मुद्राओं सहित ऋचाएँ बोल कर बताई। यह देख कर वह पंडित तो आश्चर्यचकित हो गया। उसने अपनी भूल स्वीकार की और पूज्य गुरुदेवश्री की बात का समर्थन कया।

इस घटना से अरविन्दभाई आदि चकित हो गए और पूज्यश्री के प्रति अहोभाव से भर गए।

खैर यह तो अजैनों में हिन्दू समुदाय की बात हुई, लेकिन मुसलमानों के कुरान शरीफ की जानकारी भी पूज्य गुरुदेवश्री को कम नहीं थी। डग गाँव के

हकीमजी जब पूज्यश्री के पास आते और दोनों बैठ कर जब बातें करते थे, तब उसे सुननेवालों को बहुत आनन्द आता। पूज्य गुरुदेवश्री जब कुरान की आयतें बोलते थे, तब महसूस होता कि पूज्य गुरुदेवश्री का स्तर कितना ऊंचा है? चकित हो जाएँ!

हम गुजरात से मध्यप्रदेश की ओर जा रहे थे। गुजरात के पंचमहल जिले के लीमखेडा गाँव में दुपहर को विहार किया... लेकिन रास्ते में ही मावठे की बरसात हुई, इसलिए नजदीक की एक पुलिसचौकी पर खड़े रहे... वहाँ के हेड ने सम्मान की भावना के साथ कहा....

''महाराज ! अब आप रात यहीं रुक जाएँ। लगता है कि यह बरसात अब जल्दी रुकेगी नहीं और अगला मुकाम भी दूर है। पहुँचेंगे तब अंधेरा हो जायेगा। प्रदेश खराब है और लोग भी ठीक नहीं हैं।''

इसलिए फिर वहीं रुक गए... संध्या के समय बरसात के साथ ओले भी पडे... यह देख कर पूज्यश्री ने अपनी पोथी खोली.. उसमें से पंचांग निकाला... उस समय उनके हावभाव कुछ विचित्र लगे, इसलिए हमने पूछा।

''महाराजजी ! क्या हुआ ? आप देख क्या देख रहे हैं ?''

इतने में वह पुलिसमेन बाहर गया, तब उन्होंने बताया कि ये ओले इतने शुभयोग में पड़ रहे हैं कि यदि इस समय चूल्हे पर तपेली रख कर पानी गर्म करें और उसमें इन ओलों को डाल दें तो सारे ओले हीरे बन जाएँ। उससे करोड़ो रुपए मिलें।

लेकिन तब पूज्यश्री ने उसका कोई भी उपयोग नहीं किया।

किस प्रकार की निरपेक्षवृत्ति ? किस प्रकार की निर्मोहिता और किस प्रकार की निर्लोभता ?

इसी प्रकार का वाकया उदयपुर में हुआ। उदयपुर के लहरचन्द्र ने यह घटना हमें बताई.....

पूज्यश्री उदयपुर थे और तब उनके पास एक साधक आया जो स्वर्णसिद्धि जानता था।

उसने संपूर्ण विधि पूज्यश्री को बताई और इतना ही नहीं बल्कि बहुत कम खर्च में उल्लेखनीय वजन का सोना बना कर भी बताया।

लेकिन गुरुदेवश्री ने उसे बिलकुल भी महत्व नहीं दिया और किंचित् भी उत्सुकता प्रदर्शित नहीं की। नहीं तो आज एक नहीं बल्कि कितने ही जम्बूद्वीप मंदिर बना दिए होते... लेकिन ऐसी कोई उत्सुकता या लालच था ही नहीं... मानो दूसरे आनन्दघनजी महाराज!

साधना-सफर

संशोधन की सुदीर्घ यात्रा में पूज्य गुरुदेवश्री ने बहुत कुछ प्राप्त किया और उसी के फलस्वरूप पूज्य गुरुदेवश्री के मस्तिष्क में साधना की वृत्ति विकसित हुई...! उमदा जीवन और उदात्त ज्ञान मिला है तो क्यों न सफलता प्राप्त करें ? पूज्यश्री का साधनाकाल यहीं से आरम्भ हो गया।

तप, त्याग, जप व व्रत आदि के द्वारा कई कठोर साधनाएँ की और वे अच्छी तरह फलीभूत भी हुई... भौतिक सिद्धियाँ पूज्य गुरुदेवश्री की उंगलियों पर थिरकने लगीं, लेकिन एक बार लौकिक व लोकोत्तर मिथ्यात्व के चिंतन की चमकती चिनगारी ने साधना की वेदी पर जब अग्नि प्रज्वलित कर दी... विचार किया... ओह! कहाँ भटक गया मैं ? महान पुण्य के उदय में मुझे जहाँ शुद्ध देव मिले हैं तो फिर उन्हें छोड़ कर दूसरे को क्यों संजोएँ? माँ को एक ओर कर मौसी के पास दूध पीने के लिए कौन जायेगा ? पूज्य गुरुदेवश्रीने सिद्ध हुई साधना को भी छोड़ दिया और दादा शंखेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु को अपनी साधना के केन्द्र में स्थापित किया... और दादा के चौविहार अठ्ठम के साथ सवा लाख जप विशुद्ध मन-वचन-काया तथा पूर्ण विधि-विधान के साथ पूरे किए। इस साधना में पूज्य गुरुदेवश्री ने एक जबरदस्त सिद्धि उपलब्ध की, जिसे आज की दुनिया के लिए दुर्लभ कहा जा सकता है... इससे पूज्य गुरुदेवश्री बहुत आनन्दित थे।

लेकिन फिर भी एक बार विचार आया... दादा के प्रभाव से प्राप्त ये समस्त सिद्धियाँ मेरे किस काम की हैं... ? कभी इन सिद्धियों का दुरुपयोग हुआ तो ? मेरी यह पूरी की गई साधना मिट्टी में मिल जायगी ! लेकिन वीतराग परमात्मा तो मेरे परम साध्य हैं । भौतिक सिद्धियों के साधन के रूप में यदि मैं एसे परतारक साध्य को स्वीकार करता हूँ तो यह दादा का और वीतरागत्व का घोर अपमान ही माना जायगा ! साध्य को साध्य ही रहने दिया जायगा, उसे साधन क्यों बनाएँगे ? नहीं... मुझे एसी सिद्धियों की जरुरत नहीं है।

मुझे तो केवल मेरी आध्यात्मिक सिद्धि ही प्राप्त करनी है और इसके लिए नवकार जैसा दूसरा कौन सा साधन है ? श्री नवकारः शरणं मम। साथ ही पूज्य पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकर विजयजी म. की प्रेरणा भी नवकार के लिए ही मिली, इसलिए साधना के विवरणों को व्यवस्थित रूप से एकत्रित कर नवकार की शरण में जीव को लगाया।

श्री नवकार के अव्वल आराधक पूज्य गुरुदेवश्री के जीवन में नवकार-आराधना का प्रवेश यहीं से प्रारंभ हुआ।

इसके बाद तो श्री नवकार के करोड़ों जप और साथ में नवकार-विषयक अनुप्रेक्षा-अनुचिंतन परिशीलन तथा नवकार के जानकारों के साथ संपर्क... इन सब कड़ियों के द्वारा श्री नवकार के साथ इस प्रकार का सम्बन्ध निर्मित हो गया कि उनके जैसा नवकार का आराधक दुनिया में यदि दिया लेकर ढूंढ़ने के लिए निकलें तो संशय बना रहेगा कि वैसा कोई मिलेगा अथवा नहीं !

'नवकार की आराधना व विधिपूर्वक जप के पूर्व यह आवश्यक है कि किसी समर्थ गुरुदेवश्री से मंत्रदीक्षा ले ली जाय। इसके सिवाय श्री नवकार का यथायोग्य अधिकार प्राप्त नहीं किया जा सकता है।'' इस तथ्य की जानकारी जब पूज्य गुरुदेवश्री को हुई तब मंत्रदीक्षा की योग्यता प्राप्त करने के लिए वे प्रयत्नशील बने और अन्त में सफलता भी प्राप्त कर

ली। संवत् २०१३ में माघ कृष्ण पक्ष त्रयोदशी को शंखेश्वर में दादा के दरबार के गर्भगृह में ही अपने समर्थ गुरुदेवश्री के वरद हस्तों से चौविहारा अठ्ठम के साथ मंत्रदीक्षा को विधिपूर्वक स्वीकार किया और उसके पश्चात् तो मानों पूज्य गुरुदेवश्री का यह नियम बन गया था कि रात में डेढ़ बजे उठ ही जाना है। अलार्म की कोई जरुरत ही नहीं। डेढ़ बजे अर्थात पूज्य गुरुदेवश्री उठ ही जाएँगे और पूज्य गुरुदेवश्री जब उठे, तब डेढ़ ही बजा होगा, इतनी नियमितता पूज्य गुरुदेवश्री ने साध ली थी।

डेढ़ बजे उठने के बाद प्रारंभ में जप और फिर नवकार उसके बाद आगम पदार्थ और फिर अनुप्रेक्षा प्रारंभ हो जाती... यह सब साढ़े तीन बजे तक तो चलता ही, लेकिन कई बार इसमें ही सुबह हो जाती। लगभग पूरी रात का जागरण हो और फिर भी दिन में नींद का नाम न हो। साधुपने में दिन में नींद लेने की मान्यता के प्रति तो पूज्य गुरुदेव को बहुत नफरत थी। इस प्रकार पूज्यश्री और श्री नवकार एक दूसरे में एकाकार हो गए और श्री नवकार के साथ बना यह सम्बन्ध ज़िन्दगी की अन्तिम श्वांस तक अटूट रहा। इस प्रकार के सम्बन्ध मुश्किल से ही कहीं पाए जाते हैं। मानो नवकार गुरु हों और वे स्वयं नवकार के चेले हों।

पूज्य गुरुदेवश्री की प्रवृत्ति तो ऐसी रही कि जो भी नवकार से सम्बन्धित साहित्य मिला, नवकार का कोई जानकार मिला या नवकार का कोई साधक मिला तो ऐसा लगता था, मानों कोई उनका सगा भाई मिल गया हो। सब कुछ छोड़ कर वे उसके आसपास ही रहते।

विहार करते समय रास्ते में यदि उन्हें खयाल आता कि वहाँ से कुछ दूर कोई योगी या साधक रहता है तो बिना भूले वे उससे मिलने पहुँच जाते। किलोमीटर बढ़ते रहे या फिर गर्मी बढ़ती रहे, बिना उसकी कोई परवाह किए वे वहीं चर्चा और परामर्श में तल्लीन हो जाते और अपनी साधना में वृद्धि या दृढ़ता धारण करते।

हम साबरमती थे और तब उपधान तप चल रहा था.. और एक दिन सवेरे तैयार हो कर एक साधु को लेकर बाहर जाने लगे। हम से कहते गए कि उनकी गोचरी नहीं लाएँ और न ही गोचरी के लिए उनकी प्रतीक्षा की जाय। यह भी कहा कि वे उनके ही काम के लिए बाहर जा रहे हैं .. लेकिन वे आखिर सायंकाल आए सूर्यास्त के समय ... ! प्रतिक्रमण के पश्चात् हम सब पूज्यश्री के आसपास जमा हो गए थे ! ऐसा रोज का ही नियम था और पूज्यश्री कुछ न कुछ निर्देश देते थे। आज हमने ही पूछा –

"महाराज ! कहाँ पधारे थे आप ? पूरा दिन व्यतीत हो गया"

तब पूज्यश्री ने बताया –

"आज तो बहुत आनन्द आया"

"लेकिन महाराजजी, कुछ बताएँ भी तो उसके बारे में !"

तब कहा–

"आज रात जप में मुझे संकेत मिला कि हिमालय से कोई नवकार के साधक आए हैं और फलाने स्थान पर ठहरे हैं। मुझे पता भी मिल गया, इसलिए मैं उनसे मिलने गया। लगभग पूरे दिन नवकार के सम्बन्ध में ही विचार–विमर्श होता रहा।

उसमें विशेष जानकारी तो यह मिली की नवकार किस राग में गाना चाहिए। अलग–अलग समस्या के लिए अलग–अलग पद्धति से नवकार गाया जाता है। उस योगी ने इस,बारे में मुझे एक सौ पद्धतियाँ गाकर बताई। उनकी गाने की पद्धति देखकर मुझे बहुत आनन्द आया। इसमें अधिक खुशी की बात यह रही कि मैं जिस पद्धति से श्री नवकार बोलता हूँ, वह श्रेष्ठ पद्धति है। वह मोहनीय कर्मशामक पद्धति है।"

पूज्यश्री से यह बात सुन कर हम सब आश्चर्यचकित हो गए.... कि पूज्यश्री को यह सब कैसे मालूम हुआ और वह भी इतना परफेक्ट ?

गिरनार और आबू पू. गुरुदेवश्री के आकर्षण के क्षेत्र थे । गिरनार में चार-चार माह रुके हैं और लगभग रोज ही आयंबिल करते थे ! किसी प्रकार का कोई लप्पन-छप्पन नहीं । अपने भक्तों को भी कह देते थे कि - यहाँ मुझे शांति से रहना है, इसलिए वंदन करने के लिए भी यहाँ आना टालें ।''

रोज सवेरे पडिलेहण आदि कार्यों से निवृत्त हो कर गिरनार के घने जंगल में निकल जाते । गहन क्षेत्र में पहुँच कर वहाँ रहनेवाले अद्‌भुत व चमत्कारी योगियों के पास पहुँच कर उनसे नवकार से सम्बन्धित चर्चा करते । यह भी जानने को मिला कि गिरनार की गहराई में पू. गुरुदेवश्री को ऐसे योगी भी मिले हैं, जिनकी बारह तेरह फूट की विशाल काया और हजार वर्ष की उम्र होती थी ।

इन योगियों के पास इतनी विरल सिद्धियाँ होती थीं, जो हम जैसों के लिए तो चमत्कार ही कही जाएँगी ।

इन योगियों को न तो भूख की कोई चिन्ता रहती थी और न ही प्यास की परवाह थी । सब कुछ यहीं मिल जाता था । यहाँ यह भी विचारणीय है ऐसे समस्त योगी लगभग श्री नवकार के साधक होते ही थे । इस प्रकार के योगियों से मिल कर पूज्यश्री बहुत आनन्दित और प्रफुल्लित हो जाते थे ।

लेकिन हाँ, पूज्य गुरुदेवश्री भी एक योगी पुरुष थे और यह कथन बिलकुल भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है ।

पूज्यश्री के जीवन में घटित ऐसी कई घटनाएँ हैं, जो इस बात का पूर्ण समर्थन करती हैं ।

प्राणायाम व योगाभ्यास माध्यम के द्वारा पूज्यश्री की श्री नवकार साधना में गहन पारंगतता थी ।

श्री नवकार के सम्बन्ध में उनका चिन्तन मार्गदर्शन कितना प्रभावकारी रहा होगा ? इस बारे में मुझे एक मुनिराज ने जानकारी दी कि उनके पू. गुरुदेव (पू.पं. श्रीचन्द्रशेखरविजयजी म.) ने हम सबको

किसी शास्त्र के माध्यम से नहीं, बल्कि तुम्हारे पूज्य गुरुदेवश्री (पू.पं. श्री अभयसागरजी म.) के एक सौ आठ पत्र जिसमें प्रकाशित हुए हैं, उस नमस्कार तत्व चन्द्रिका नामक पुस्तक के द्वारा वाचना (प्रवचन) प्रदान की है और वह भी पाँच माह तक... यह सुन कर तो हमें ऐसा लगने लगा कि जीवन को अब श्री नवकार के चरणों में समर्पित कर देना चाहिए।

उसी समुदाय के पू. पं. श्री महाबोधिबिजयजी महाराज मुझे सुमेरु नवकार तीर्थ पर मिले, तब उन्होंने इस नमस्कार तत्त्व-चन्द्रिका की प्रशंसा करते हुए बताया कि वे प्रत्येक चातुर्मास में उस पुस्तक को एक बार पढ़ते ही हैं। उसमें से नए-नए रहस्य मिलते हैं।

पूज्यश्री के जीवन की किसी भी विशेषता के लिए यदि कोई प्रशंसा करता, तब उसका श्रेय वे श्री नवकार को ही बताते थे। श्रेष्ठ-सुन्दर-आकर्षक ऐसे किसी भी तत्व के लिए पूज्यश्री उसे श्री नवकार की महिमा के रूप में ही दर्शाते और यदि कुछ खराब या गलत हो जाता तो पूज्य गुरुदेवश्री यही बताते कि लगता है कहीं श्री नवकार माता की अवहेलना-तिरस्का र या उनकी मर्यादाभंग हुई है, इसलिए ऐसा हुआ।

अर्थात् उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ही श्री नवकार माता की गोद में समर्पित कर दिया था और उसके प्रभाव के प्रमाण को कहीं ढूंढने की जरूरत नहीं है। पूज्य गुरुदेवश्री के जीवन में कई इस प्रकार की घटनाएँ घटित हुई हैं, जिसे समझने के लिए हमारी बुद्धि असहाय लगती है।

बस उसे तो चमत्कारिक घटना मानकर ही हमें संतोष कर लेना पड़ता है। हमें इसका किंचित भी संकेत नहीं. मिलता है कि वह घटना कैसे घटी ? मेरी जानकारी में ऐसी कई घटनाएँ घट चुकी हैं, जिन्हें मैंने इस पुस्तक के अन्तिम विभाग में वर्णित भी किया है। विषयान्तर होने के कारण यहाँ लिखना उचित नहीं लगा.. किन्तु पाठक अन्तिम पृष्ठों को पलटना न भूलें।

युवावर्ग की ओर

साधना के इस मार्ग पर आने से पूर्व बीमारी के दौरान गुरुदेव ने युवावर्ग को धर्म की ओर प्रेरित करने का संकल्प किया... इस तरह गुरुदेव अपने कल्याण के साथ ही अन्य व्यक्तियों की भलाई के लिए भी चिंतित रहते थे।

आर्य संस्कृति जैसी भारत की अनमोल धरोहर के लिए पूज्यश्री स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करते थे। भारत में प्रवेश कर अंग्रेजों ने लार्ड मेकेलो की नयी शिक्षण प्रणाली प्रारंभ कर आर्य संस्कृति की जो घोर अवहेलना की थी, उसका पू. गुरुदेव ने गहन अभ्यास किया, साथ ही पंडित श्री प्रभुदास बेचरदास के सम्पर्क से पूज्यश्री की विचारधारा सुदृढ बनी।

युवावर्ग में धर्म के प्रति उदासीनता देखकर पूज्य गुरुदेव श्री बहुत क्षोभित थे।

युवावर्ग मंदिरों एवं संतों से दूर रहे, इस बात से पू. गुरुदेवश्री का मन खिन्न रहता था। अतः पू. गुरुदेवश्री उपाश्रय में तो व्याख्यान देते ही थे, साथ ही युवावर्ग के मानसपटल पर आर्य संस्कृति के मूल्यों को प्रस्थापित करने एवं धर्म के प्रति उनमें रुचि पैदा करने के लिए वे नवयुवकों के बीच भी प्रवचनों का आयोजन करते थे। इसके लिए गाँव-गाँव के विद्यालयों के परिसरों में अत्यंत सहज व सरल भाषा में वात्सल्य भाव से व्याख्यान देते। आम जीवन के विविध क्षेत्रों में प्रगति के आयामों को संजोने की प्रेरणा भी देते। अन्त में प्रश्नोत्तरी का आयोजन करते। इसमें युवकों से वे उनके अन्तर्मन में उठते प्रश्नों को निःसंकोच पूछने की अपील करते, साथ ही उनके प्रश्नों का समाधान सदैव इस प्रकार करते कि युवावर्ग संतुष्ट हो जाता।

यदि सच कहा जाय तो युवाओं की यह प्रश्नोत्तरी ही पालीताणा में स्थापित जंबूद्वीप की इमारत की नींव का मजबूत पत्थर बनी थी।

पृथ्वी की ओर पहली दृष्टि

यह बात ठीक से देखने और समझने जैसी है। नागपुर में पूज्यश्री ने युवकों के लिए इसी प्रकार का

प्रवचन का आयोजन किया। प्रवचनों के माध्यम से अनेक मुद्दों पर उन्हें समझाया। बाद में प्रश्नोत्तरी भी बहुत अच्छी रही, जिसमें आज के युवा मन को विचलित कर देते वाले सवाल यथा देवलोक, नर्क, पुण्य-पाप, आत्मा आदि जिज्ञासाओं का तार्किक दृष्टिपूर्ण से समाधान किया गया।

जैसे ही प्रश्नोत्तरी पूरी हुई कि सामने से एक चंचल युवक आकर खड़ा हुआ और कहने लगा महाराज! 'रुकिये... मैं अभी वापस लौट कर आता हूँ और वह युवक पास के एक कमरे में गया - थोड़ी ही देर में वह सीधा पू. गुरुदेवश्री के पास आकर खड़ा हो गया। उसके हाथ में पृथ्वी का गोल गोला (ग्लोब) था। उसने आकर तुरंत कहा महाराज ! आपके द्वारा दिया प्रवचन और हमारे सवालों का समाधान आपश्री के गहन चिंतन का परिचायक है, इसलिए आपके द्वारा दिये उत्तरों पर न तो हम कोई दलील कर सकते हैं और न ही खंडन कर सकते हैं। लेकिन साथ ही हम आपकी बातों का स्वीकार भी नहीं कर सकते हैं। आपकी बात को हमारी बुद्धि तो स्वीकार करती है पर हृदय उसे मंजूर नहीं करता है।'

युवक की बात से पू. गुरुदेवश्री पहले तो आश्चर्य चकित हो गये कि यह युवक ऐसी बातें क्यों कह रहा है पू. गुरुदेव ने शांति से उससे पूछा- 'भाई। ऐसी ''क्या बात है?'' जरा स्पष्ट रूप से बताओ अतः युवक बताने लगा महात्माजी ! हम तो बचपन से ही पढ़ते आये हैं कि पृथ्वी ऐसी गोल है और पृथ्वी गोल-गोल घूमती है' यह रहा पृथ्वी का गोला। बस इतनी ही तो पृथ्वी है, फिर आप जो देवलोक और नर्क की बात कह रहे थे, वे सब कहाँ हैं ? आप कह रहे हैं कि देवलोक ऊपर आरे नर्क नीचे है.. जबकि इस गोले में तो आपने भारत के नीचे अमेरिका दर्शाया है आप तो कहते हैं कि नर्क में तो दुःख ही दुःख है, जबकि अमेरिका में तो सुख ही सुख है कितने वैभव और विलास के साधनों से वह सुसज्जित है ? समग्र विश्व अमेरिका के पीछे पागल है।

इसलिए पृथ्वी के गोले के साथ आपश्री की

बात कहाँ तक तर्कसंगत है ? आरै साथ ही आपने बताया कि ऊपर देवलोक है, परंतु पृथ्वी के अतिरिक्त तो और कुछ भी नहीं है देवलोक है कहां ?

इतना बोलकर युवक शांत हो गया... युवक की बात पर गुरुदेवश्री को भी आश्चर्य का अनुभव हो रहा था.. उस समय तो गुरुदेवश्री ने युवक को समझा कर संतुष्ट किया, परंतु स्वयं के मस्तिष्क में वह पृथ्वी का गोला घुस गया।

पू. गुरुदेवश्री ने पृथ्वी का गोला पहली बार ही देखा था... आज तक पृथ्वी का अभ्यास अवश्य किया था। परंतु पुस्तकों के द्वारा ही...

गहरे पानी पैठ

नए प्रकार के शिक्षण की बात तो पूरी तरह नई थी ही, लेकिन पृथ्वी के सम्बन्ध में संशोधन की एक नई दिशा की ओर वे उन्मुख हुए। पृथ्वी के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने और विशेष शोध कार्य में प्रवृत्त होने के लिए पूज्य गुरुदेवश्री........

ने तर्व प्रथमं भूंल कं प्रंराभ्कि अध्ययन कियं अैंर फिर आंग्रेजी कं अभ्यंत भी कियं, जितते वे अपनी रुचि के इत क्षेंत्रेमें अंगें की पढ़ंई जंरी रख तको।

उनकं अध्ययन जैतै-जैते गंहनदर हेंदं गंयं, उन्हो नई-नई उपलब्धियँं प्रंप्द हेंने लगी। इत शेंधयंत्रेमें उन्हो नई-नई जंनकंरियँं जबं म्लिने लगी, दबं उन्हो स्पष्ट प्रदीद हें गंयं कि यह मंन्यदं पूरी दरह अंधंरहीन व गंलद है कि पृथ्वी गेंल है अैंर वह घूमती है।

इस अभिप्राय के लिए कि पृथ्वी गोल है और वह घूमती है, वैज्ञानिकों ने जो भी प्रमाण प्रस्तुत किए हैं, वे सब अधूरे और संदिग्धहैं।

अगर ये सिद्धांत इतने अविश्वसनीय और लचर हैं तो उन्हें भारत में स्थान किस प्रकार मिल गया? क्यों विद्यालयों आदि के द्वारा इस गलत मान्यता को दृढ़ता प्रदान की जा रही है ? इसका पता लगाने के लिए उनकी शोधयात्रा गहन होती गई और तब उन्हें जो-जो नए तथ्य मिलते गए, उससे वे स्वयं भी आश्चर्यचकित हुए।

ओह ! जिस आर्य संस्कृति की इमारत को सजाने, निखारने और सुरक्षा प्रदान करने के लिए मैं जो इस प्रकार का निष्ठापूर्वक प्रयत्न कर रहा हूँ, उसी इमारत के नीचे सुरंग बनाने जैसी यह एक चेष्टा है। इसी सुरंग में पूरी इमारत को भस्मीभूत कर देने की प्रचंड ताकात को संजोया गया है।

पृथ्वी गोल है और वह घूमती है। यदि इस मान्यता को पूर्ण आधार दिया जाता है तो उस युवक की तरह समग्र लोकमानस में पाप-पुण्य, स्वर्ग-नर्क, आत्मा-परमात्मा की बातें और ढेरों शास्त्रों के द्वारा महापुरुषों ने इसके साथ ही कर्म का जो दर्शन समझाया है वे सब उन्हें संदेहास्पद लगेंगे और जब पृथ्वी के आकार के बारे में उनके पास कोई दूसरा विकल्प नहीं रहेगा तो आर्य संस्कृति के आधारभूत वे समस्त तत्त्व कपोल कल्पित समझे जाएंगे और तब उन पर असत्य का लेबल लग जायेगा और उन तत्त्वों को मिथ्या मानने के कारण उनके प्रतिपादक ऋषिमुनियों और वीतराग परमात्मा को उन्हें झूठा और ढ़ोंगी समझने में बिलकुल भी संकोच अनुभव नहीं होगा।

यदि ऐसा होता है तो फिर हमारे जीवन के आधार समान आगम, शास्त्र, धर्म-प्रवृत्तियाँ तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष और उनकी बुनियाद पर टिकी समाज व्यवस्था जो आर्य संस्कृति की अवलंबन है पूरी तरह तहस-नहस हो जायगी। भारतीय गरिमा की गाथाएँ तब सब मिट चुकी होंगी और उन्हें ढूँढने पर भी खोजा नहीं जा सकेगा।

जिहाद यात्रा

ओह ! तो फिर यह पूरी तरह नामंजूर...। चिंतन की चिनगारी अब पूज्य गुरुदेव की आत्मा को आहत करने लगी। इसके पश्चात् अठारह वर्ष के संशोधन के फलस्वरूप वे अपनी बुनियाद मजबूत कर मैदान में आए और पृथ्वी के आकार तथा पृथ्वी की गति के संबंधमें जिस प्रकार की विकृत मान्यताएँ चलन में है और उसके बारे में जो प्रयोग बताए जाते हैं वे कितने आधारहीन हैं व वैज्ञानिकों के अभिप्रायों में कितना

अधूरापन व संदिग्धता हैं उन सबको वे विद्यालयों और महाविद्यालयों में प्रमाणों व व्याख्यानों द्वारा स्पष्ट करने लगे और साथ ही अपने मंतव्य को वैज्ञानिकों के साधनों के द्वारा व उनके ही कथनों के द्वारा वे प्रमाणित भी करने लगे।

'देखो... विज्ञान से अभिभूत मत हो जाओ। आज का विज्ञान पराधीन है... यह वही बताता है जो साधन या उपकरण बताते हैं और कई बार तो वे साधन कुछ अलग ही विकृति दर्शाते है।' तब पूज्यश्री कहते थे कि यंत्रों के माध्यम से उपलब्धजानकारियों में कोई तत्व होता है, यह एक लचर धारणा है।

इस प्रकार पूज्यश्री ने प्रवचनों, पुस्तकों व पत्र-व्यवहार के माध्यम से तीव्र पुरुषार्थ आरंभ कर दिया।

प्रचार की यह ध्वनि जब चारों ओर गूँजने लगी तब वैज्ञानिकों और जिज्ञासुओं की ओर से पूज्य गुरुदेवश्री के समक्ष कई प्रकार के प्रश्न प्रस्तुत किए जाने लगे जैसे कि:

'यदि पृथ्वी गोल नहीं है व वह घूमती भी नहीं है, तब फिर दिन-रात किस प्रकार होते हैं ? ऋतु परिवर्तन क्यों होते हैं। अमरिका और भारत के बीच समय में क्यों इतना फर्क है। उत्तर ध्रुव पर छः माह तक किस प्रकार सूर्यप्रकाश बना रहता है ? इन्हें आप किस प्रकार समझाएंगे? फिर यदि पृथ्वी गोल नहीं है तो फिर पृथ्वी किस प्रकार की है? उसका वास्तविक आकार बताएंगे ? इस प्रकार चारों ओर से इस तरह के सवालों की झड़ी लगने लगी।

लेकिन पूज्य गुरुदेवश्री इन सबके लिए तैयार थे। अठारह वर्षों के गहन शोधकार्य में उन्होंने शास्त्रीय ढंग से इस पहलू पर भी विचार किया था।

तद्नुसार समस्त जगत का स्वरूप, जंबूद्वीप का स्वरूप और सूर्य-चन्द्र के घूमने से दिन-रात किस प्रकार होते हैं ? इन सबके बारे में वे समझाने लगे। इसके लिए बड़े चार्ट, बोर्ड्स आदि को भी माध्यम के रूप में वे रखने लगे।

फिर भी स्पष्ट रूप से समझाने के लिए और प्रयोगों के द्वारा उसे प्रमाणित करने के लिए संवत् २०२२ में कपड़वंज में मिट्टी का एक ११० इंच का जंबूद्वीप का मॉडल बनाया और बड़े स्तर पर उसके प्रदर्शन के इंतजाम किए और सूर्य व चन्द्रमा को घूमते हुए बता कर सब प्रकार की समस्याओं के हल दिए, जिससे लोगों की जिज्ञासा शांत हुई।

श्री जयभिक्खु

तब प्रसिद्ध गुजराती लेखक श्री जयभिक्खु व गुजराती दैनिक 'गुजरात समाचार' के मालिक शांतिभाई भी इस प्रदर्शनी को देखने कपड़वंज आए पूज्य गुरुदेवश्री ने प्रत्येक मुद्दे को स्पष्ट किया। वे दोनों इससे अत्यंत प्रभावित हुए। इतना ही नहीं बल्कि 'गुजरात समाचार' में उस समय एक विशेष समाचार के रूप में इसे प्रकाशित किया गया था तथा 'ईंट अने इमारत' स्तंभ में पूज्य गुरुदेवश्री की शोधप्रवृत्ति का विशद विवरण भी समाचारपत्र में प्रस्तुत किया गया, जिस लोगों ने बहुत पसंद किया।

इसके पश्चात् सुवासरा (म.प्र.) में प्राण-प्रतिष्ठा के समय सेठ श्री कस्तूरभाई लालभाई के समक्ष तथा इन्दौर, चाणस्मा में पतरे के मॉडल्स बनवा कर उन्होंने बड़े स्तर पर अपने संशोधन का प्रचार किया।

भव्य शिविरों व परिसंवाद का भी आयोजन वे करते थे। उसमें शीर्ष स्तर के वैज्ञानिकों व विद्वानों के समक्ष पूज्यश्री अपनी बात प्रस्तुत करते थे...

आक्रोश के समक्ष संतोष

प्रचार दिलाने वाली इस मान्यता को लेकर एक बार प्रसिद्ध लेखक हरिहर शुक्ल ने 'गुजरात समाचार' पत्र में पूज्यश्री पर अपने आक्रोश इस प्रकार प्रकट किए कि समग्र गुजरात में तब खलबली मच गई। पूज्यश्री के लिए जो शब्द नहीं लिखने चाहिए थे, वे भी उसमें लिखे। लेकिन यहाँ यह आश्चर्यजनक हकीकत कि इतना सब कुछ होने पर भी पूज्य गुरुदेवश्री को कोई रोष नहीं आया। बल्कि उन पर पूज्य गुरुदेवश्री ने सामान्य भाषा में ही पत्र लिखा।

आप स्वयं के समक्ष आक्रोश व्यक्त करने वाले व्यक्ति को भी पूज्य गुरुदेवश्री ने आमंत्रण भेजा और बताया कि–'आप एक बार मेरे पास आओ और मुझे सुनो तथा मुझे समझो। इसके प्रत्युत्तर में सामने से आक्रोशपूर्वक जवाब ही आया कि 'आप ही आजाइए।' इसके प्रत्युत्तर में पूज्य गुरुदेवश्री ने कहा कि 'हम जैन साधु हैं। हमारी आचारसंहिता कुछ इस प्रकार की है और चातुर्मास के कारण तो विहार कर भी हम वहाँ नहीं आ सकते... आप अवश्य यहाँ आएँ। आपके भाड़े आदि की समस्त व्यवस्था हो जायेगी।'

अंत में वे सज्जन हरिहर शुक्ल अपने भाई बंसीधर शुक्ल के साथ चाणस्मा आए। सबसे पहले उन्होंने जब इन विलक्षण साधु को देखा... वहाँ वे उनके आडंबरहीन व आसक्तिहीन साधुजीवन से अत्यंत प्रभावित हुए। बाद में उनकी चार घंटे तक पूज्य गुरुदेवश्री के साथ बैठक हुई। पूज्यश्री के साथ उस अवधि में खुले वातावरण में वार्तालाप व परामर्श सौम्य भाषा में सम्पन्न हुए। पतरे के बने जंबूद्वीप मॉडल को भी उन्होंने बताया। इस प्रकार सैद्धांतिक वार्तालाप के साथ प्रायोगिक मॉडल बताने से दोनों भाई संतुष्ट हुए। चाणस्मा के श्रीसंघ ने भी उचित सम्मान दर्शाया। उनके सब भ्रम दूर हो गए। आप दोनों प्रसन्नतापूर्वक वहाँ से रवाना हुए और उसके पश्चात् जिस समाचारपत्र में पूज्यश्री के विरोध में सतत समाचार छप रहे थे, उसी समाचार पत्र में पूज्यश्री के समर्थन के साथ, उनके अनुसंधान पर भी विशद वर्णन छपने लगे। आप दोनों भाई पूज्य गुरुदेवश्री के पास बारंबार आने लगे। इस प्रकार उनका संपर्क प्रगाढ़ बनता गया और प्रकांड विद्यावेत्ता श्री उमाशंकर जोशी जो मात्र गुजरात के ही नहीं बल्कि अखिल भारतीय स्तर के प्रखर वैज्ञानिक थे, उनकी पूज्य गुरुदेवश्री के साथ मुलाकात हुई और उन्हें डेढ़ घंटे तक विविधप्रयोगों के द्वारा तार्किक ढ़ंग से समझाया तब उन सज्जन महानुभाव के उद्‌गार थे। 'मुनिश्री! आपकी बातें निश्चित ही तथ्यात्मक लगती हैं। उन पर विचार होना चाहिए।'

विक्रम साराभाई

इसके पश्चात् संवत् २०२८ में पूज्य गुरुदेवश्री का संपर्क श्री विक्रम साराभाई के साथ हुआ, जो उस समय भाभा विश्वविद्यालय के निदेशक थे। भारत की ओर के विश्व वैज्ञानिक परिषद में उनकी एक वैज्ञानिक के रूप में नियुक्ति हुई थी। उनके साथ भी पत्रव्यवहार हुआ। अंत में विक्रम साराभाई ने बताया कि इस विषय को वे उनसे रूबरू समझना चाहेंगे। लेकिन उस समय भारी उत्तरादायित्व और अत्यंत व्यस्तता के कारण बाहर नहीं निकल पाने की स्थिति से उन्होंने अवगत कराया। लेकिन संयोग कुछ ऐसा बना कि पूज्य गुरुदेवश्री को अहमदाबाद जाना पड़ा। विक्रम साराभाई के साथ मुलाकात का कार्यक्रम पहले ही तय हो गया था और वह मुलाकात अत्यंत प्रभावी व सार्थक बन सकती थी...लेकिन पूज्य गुरुदेवश्री पानसर तीर्थ तक पहुँच गए और एक हृदय विदारक घटना घट गई, जिसमें विक्रम साराभाई इस दुनिया से ही अकाल विदा हो गए। एक स्वर्ण अवसर मिला था, लेकिन वह भी बिना कोई परिणाम प्रदर्शित किए वैसे ही हाथ से निकल गया

यदि...वह मुलाकात वास्तव में हुई होती.... तो उससे इतना सशक्त समर्थन मिलता कि हमारी मान्यता दुनिया के कोने-कोने में बहुत कम प्रयास में ही पहुँच चुकी होती। लेकिन अफसोस! समय ने साथ नहीं दिया।

विदेशियों से सम्मानित

धीरे-धीरे पूज्य गुरुदेवश्रीने इस सम्बन्धमें विदेशियों से संपर्क प्रारंभ किया और पूछा कि पृथ्वी यदि गेंद जैसी गोल है और वह घूमती है तो इस मान्यता के संबंध में जो आपत्तियाँ हैं, उनके बारे में उनके क्या स्पष्टीकरण है ? इस बारे में विदेशी वैज्ञानिकों के समक्ष प्रश्न प्रस्तुत किए गए लेकिन वे कोई प्रत्युत्तर न दे सके और कई ने इसके लिए खेद व्यक्त भी किया।

पृथ्वी के संबंध में शोध जारी थी और तब ही

अपोलो की चन्द्रयात्रा के लिए वातावरण निर्मित होने लगा। पूज्य गुरुदेवश्री का यह विषय नहीं था, परंतु चूँकि यह उनके ही विषय से संबंधित था, इसलिए इस पर भी उन्होंने गहन शोध प्रारंभ कर दिया।

अपोलो का उड्डयन कराने वाली केप-केनेडी स्थित अमरीकी संस्था 'नासा' के साथ भी पूज्य गुरुदेवश्री ने पत्रव्यवहार किया और उसमें प्राप्त जानकारी के आधार पर उन्होंने सुराग ढूँढे और फिर चन्द्रयात्रा के वर्णन पर असत्यता की मुहर लगा दी... इसके बारे में उन्होंने पुस्तिकाएँ भी लिखीं।

पूज्यश्री की यह जिहाद भी एक पक्षीय रही। कहीं से भी संतोषप्रद जवाब नहीं मिले। पूज्य गुरुदेवश्री की इस चिंतनधारा से विदेशी वैज्ञानिक प्रभावित हुए और उन्होंने तो पूज्य गुरुदेवश्री को अपनी संस्था का बिना किसी आमंत्रण के संस्था के सदस्य के रूप में न केवल स्वीकार किया, बल्कि संस्था की ओर से विभिन्न उपाधियाँ व डिग्रियाँ भी उन्हें प्रदान की।

ये रही वे डिग्रियाँ

एम.एन.जी.एस. (वाशिंग्टन)

एम.ए.एस. (मुम्बई)

एम.ए.आई.एस.टी. (दिल्ली)

एम.ओ.जी. (अहमदाबाद)

एम.आई.एस.सी.ए. (कोलकाता)

एक से भले दो

यहाँ उल्लेखनीय वाक्या यह हुआ कि गुरुदेवश्री का अँग्रेजी भाषा में लिखा साहित्य अमरिका में प्रकाशित हुआ, व अमरिका के चार्ल्स जॉनसन नामक एक वैज्ञानिक ने जो स्वयं भी पृथ्वी को गोल नहीं बल्कि सपाट मानते थे और उन्होंने भी पृथ्वी के गोल होने की मान्यता को चुनौती दी थी, उन जॉनसन को मालूम हुआ कि भारत में 'अभयसागर' नामक एक वैज्ञानिक है, जो स्वयं भी पृथ्वी को सपाट ही मानते हैं।

तब जॉनसन इतने खुश हो गए कि येन-केन प्रकार से उन्होंने पूज्य गुरुदेवजी के साथ संबंध स्थापित किया और वे स्वयं 'फ्लेट अर्थ न्यूज' नामक जो पत्रिका प्रकाशित करते थे, उसके कुछ अंक उन्होंने अपने पत्र के साथ भेजे। उसमें उन्होंने बताया था कि :

'यह अत्यंत प्रसन्नता की बात है कि आप भी पृथ्वी को सपाट मानते हैं। मैंने यहाँ 'द फ्लेट अर्थ' नामक एक सोसायटी बनाई है और उसका मैं आपको भी सदस्य बनाता हूँ। आप एक बार यहाँ (अमरिका) अवश्य आइए।'

पूज्य गुरुदेवश्री को यह जानकर बहुत आनंद हुआ कि अमरिका में भी यह मान्यता प्रचलित है और उन वैज्ञानिक बन्धु को अपने जवाब में पूज्य गुरुदेवश्री ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए जब साधु की जीवनचर्चा और उसकी मर्यादा से उन्हें अवगत कराया और यह भी बताया कि हमारे आचार में यह न होने के कारण मैं वहाँ नहीं आ सकता हूँ, लेकिन आप यहाँ अवश्य आइए।

जब साधु जीवन की मर्यादा की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त होने के पश्चात् जॉनसन का पत्र आया... आपकी इस प्रकार की आचार-संहिता के बारे में जानकर उन्होंने खुशी व्यक्त करते हुए बताया कि-'मुझे बचपन से ही भारतीय संस्कृति पर नाज है और आज़ तक हमने मांसाहार ही नहीं बल्कि अंडा भी कभी मुंह में नहीं रखा है और समय आने पर मैं वहाँ आऊँगा।'

इसके पश्चात् लम्बा पत्रव्यवहार तो चलता रहा, लेकिन यह अफसोसजनक रहा कि फिर उनका पूज्य गुरुदेवश्री के साथ कभी रूबरू मिलना संभव नहीं हो पाया।

विदेशी भी मोहित

पूज्यश्री के ज्ञान से प्रभावित हो कर विदेशी भी पूज्यश्री से मुलाकात के लिए आने लगे। वैज्ञानिक डॉ. ऐंजालश विशेष रूप से पूज्यश्री से भेंट करने के लिए ऊँझा आए और उनके साथ पृथ्वी के संबंधमें विस्तृत रूप से विचार-विमर्श किया। वे पूज्यश्री के प्रशंसक

बन गए और इतना ही नहीं बल्कि अपने नगर न्यूयोर्क लौट कर सोसायटी ऑफ जियोलाजी एंड जॉग्रफी के सदस्यों के समक्ष पूज्यश्री की प्रशंसा की । इसके फलस्वरूप उनकी संस्था के प्रत्येक सदस्य की सहमति से पूज्यश्री को संस्था के सदस्य के रूप में स्वीकार किया गया।

इसी प्रकार स्विटझरलैंड की एक महिला नकालटिफन वैसे भारतीय संस्कृति के अभ्यास के लिए ही यहाँ आई थी, लेकिन बाद में वह पूज्यश्री के संपर्क में आई। एक बार पालीताणा के गिरिविहार में पर्यूषण के दौरान अकबर बादशाह के पूर्वजन्म के संबंधमें उनके प्रवचन सुन कर वह बहुत प्रभावित हुई थी।

इन भद्र महिला ने जैन धर्म पर एक सुंदर ग्रंथ लिखा और उसे प्रकाशित किया और उसमें विशेष रूप से पूज्य गुरुदेवश्री का उल्लेख किया और साथ ही वह ग्रंथ पूज्य गुरुदेवश्री को ही समर्पित भी किया।

जंबूद्वीप की जन्मदात्री

इस प्रकार पूज्य गुरुदेव की मान्यता व्यापक बनती गई। इसलिए लोगों और संघ की ओर से मांग उठने लगी कि इस मान्यता को प्रमाणित करने वाले मॉडल कों विशाल स्तर पर बनाया जाना चाहिए, जिससे बहुजन हिताय लक्ष्यों को ध्यान में रखा जा सके। इसके फलस्वरूप जंबूद्वीप मंदिर की स्थापना की गई।

यद्यपि पूज्य गुरुदेवश्री स्वयं किसी भी प्रोजेक्ट या संस्था को संचालित करने के पक्ष में नहीं थे। उनकी धारणा यही थी कि किसी भी साधु से संचालित कोई भी मंदिर, परियोजना या संस्था नहीं होनी चाहिए। क्योंकि इस वजह से साधु को अर्थ-संयोजन में हस्तक्षेप करना होता है फिर उसके लिए लक्ष्य भी निर्धारित करना पड़ता है जिससे आचार-साधना में शिथिलता आने की संभावना रहती है। साधु की मर्यादा भंग होती है साधु जीवन में विघ्न उपस्थित होते हैं।

लेकिन जंबुद्वीप-मंदिर आर्य-संस्कृति की जड़ों को सशक्त बनाने वाला, इसलिए अपवाद की तरह पूज्य गुरुदेवश्री ने अनिवार्यता के रूप में स्वीकार करते हुए इस योजना को कार्यान्वित करना प्रारंभ किया।

निर्लेपता बरकरार

उन्होंने प्रारंभ से ही यह ध्यान रखा कि अपने साधुजीवन को किसी भी प्रकार की आँच न आए।

इतनी बड़ी विशाल योजना के संचालन सूत्र अपने हाथ में लेने पर भी पूज्य गुरुदेवश्री अपने सिद्धांतों के प्रति सदा सचेत रहते थे। अपने आचार-व्यवहार व चरित्र-चुस्तता में किसी भी प्रकार की शिथिलता न आ जाए, उसका सदा ध्यान रखते थे।

इस योजना के प्रारंभ में ही पू. गुरुदेवश्री ने स्पष्ट कर दिया कि आर्थिक मदद के लिए उनकी कोई जवाबदारी नहीं रहेगी। इसके लिए मुंबई, कोलकाता, चेन्नई, बैंगलुरु कहीं भी वे भटकने वाले नहीं हैं। उसका काम केवल मार्गदर्शन देना होगा। शर्त यही रहेगी कि आचार को वे उनसे दूर नहीं होने देंगे।

जब पूरा लोकप्रवाह सांसारिक प्रलोभनों में डूबा जा रहा हो, तब पूज्यश्री इससे बहुत दूर रहना चाहते थे और दूर ही रहे।

पूज्यश्री दुनिया के आकर्षणों के प्रति जागरुक, आर्य संस्कृति के प्रति सघन आसक्ति वाले और चारित्रिक जीवन के चुस्त चाहक थे।

ओच्छव-महोच्छव के स्वरूप में परमात्म भक्ति की ओर पूज्यश्री की पर्याप्त रुचि थी। क्योंकि परमात्मा की भक्ति ही पूज्यश्री का अमिट व्यसन रहा। अरिहंत परमात्मा की भक्ति में जब स्वयं सराबोर हो जाते, तब वे अपना भान भी भूल जाते थे। घंटों तक भक्ति के उस प्रवाह में वे परम आनंद की अनुभूति प्राप्त करते थे।

अरे! कई बार तो उन्हें लोकसंपर्क से भी कोफ्त होने लगती थी, क्योंकि लोकसंपर्क भक्ति में बाधक

ही रहता है। इसे भी क्यों सहन करें? कई बार तो इसके लिए जो अधिक प्रसिद्ध नहीं है वैसे तीर्थ या गाँव में बहुत कम ठाणों के साथ वे महीनों तक बिराजते और भक्ति का आस्वादन लेते थे।

इसलिए परमात्मा की भक्ति के प्रति निरंतर आसक्ति, लेकिन उसके साथ ही सांसारिक लोभ-लालच की गंदगियों व विकृतियों के प्रति पूज्यश्री का सदैव रोष ही रहता था।

आज की दिखावटी पूजाएँ, वाहियात रूप से व्यक्त होती भावनाएँ, असंगत रूप से रची जाती आंगियों आदि की ओर पूज्यश्री बहुत अप्रसन्नता व्यक्त करते थे। महोत्सवों में विद्युत रोशनी के भपके, माईक का शोर-प्रदूषण, फोटोग्राफी, वीडियो, मूवी, सिने-संगीत, डिस्को म्यूजिक के गीतों के प्रति वे अत्यंत अरुचि रखते थे।

किसी महोत्सव में निश्रा के लिए पूज्य गुरुदेवश्री के पास यदि कोई अनुरोधआता तो पूज्यश्री स्पष्ट कर देते थे कि जमाने के चालू रीत-रस्मों का यदि अनुपालन न हो रहा होगा तो उन्हें आने में कोई आपत्ति नहीं है। अन्यथा उन्हें अलग रही रहने दें।

इसलिए अपने सिद्धांतों के प्रति अतिनिष्ठा के कारण वे कई बार बड़े महोत्सवों और कार्यक्रमों में उपस्थिति नहीं दे पाए।

अरे ! जंबूद्वीप मंदिर की अंजनशलाका व प्राण-प्रतिष्ठा उत्सवों में जिसके लिए वे स्वयं ही दारोमदार बताए जाते थे, वहाँ जब उन्होंने देखा कि समस्त सागर समुदाय एकत्रित होने वाला है और सागर समुदाय के भक्तों के समूह का एक विशाल समुद्र वहाँ हिलोरे लेने वाला है तब उस दशा में उन्हें लगा कि वे अपने सिद्धांतो का पालन करने में कठिनाई अनुभव करेंगे, इसलिए उन्होंने स्वयं ही गच्छाधिपति से प्रार्थना की कि 'आप पधारें और अपने ही वरद् हस्तों से यह कार्य संपन्न होने दें। लेकिन मुझे राहत दें... इस महोत्सव से मुझे अलग ही रहने दें।'

लेकिन यह कैसे संभव हो सकता था ? बगैर पूज्य गुरुदेवश्री के काम आगे कैसे बढ़ सकता था... इसलिए बहुत दबाव और आग्रह के वश होकर पूज्यश्री कार्यक्रम में सम्मिलित हुए। लेकिन अपनी कई शर्तों के लिए मंजूरी मिलने के बाद ही उन्होंने इसके लिए सहमति दी।

लेकिन फिर भी कई विचलनों के लिए पूज्यश्री नाराजगी व्यक्त करते थे और कार्यक्रम में अपनी उपस्थिति के लिए अफसोस भी जाहिर करते थे।

आर्य परंपरा के निर्देश

पूज्य गुरुदेवश्री आर्य मर्यादाओं के पक्के हिमायती थे।

अपने अवग्रह में नियत समय के अलावा अन्य किसी समय में किसी भी साध्वीजी या बहिनज़ी को आने के लिए उनका सख्त निषेध का आदेश ही रहता था। एक बार आगम वाचना के समय कालचारिणी व अकालचारिणी साध्वी के विषय में अत्यंत सुंदर विवेचना प्रस्तुत की थी व बताया था कि विजातीय संपर्क कितना खतरनाक होता है और इसलिए फूहड़ या आर्य मर्यादाहीन वेश धारण कर आई महिला पर वे वासक्षेप भी नहीं करते थे।

इन सबका अवलोकन करने पर कई लोग पू. गुरुदेवश्री को जिद्दी व सनकी स्वभाव का कहते तो पूज्यश्री ऐसे विशेषणों को प्रसन्नता से अपने लिए एक प्रकार की मुबारकबाद ही समझते थे। चारित्रिक जीवन की चुस्तता के संबंधमें पूज्यश्री एक ख्यातिलब्धमहापुरुष थे।

मोहनीय कर्म न हों, इस प्रकार का साधुजीवन होना चाहिए और वे अपने जीवन द्वारा प्रदर्शित भी करते थे।

सहज सादगी

सादगी पूज्यश्री का ट्रेडमार्क था। वे हर व्यवहार में सादगी अपनाते थे। पहनने के कपड़े व्यवस्थित होते ही नहीं थे। कपड़ा कहीं फटा हुआ तो

कहीं सिलाई किया हुआ होता था। पूरा नया कपड़ा तो कभी लिया ही नहीं। अपने से वरिष्ठों के उतरे हुए कपड़े ही वे पहनते थे।

सूती व ऊनी कपड़ों के अलावा वे और किसी प्रकार के कपड़ों का उपयोग नहीं करते थे। अरे! स्वयं के उपयोग में आने वाली कोई भी वस्तु या कपड़ा रेशमी, टेरिलीन या नायलन का नहीं होना चाहिए... साथ ही कपड़ों में शोबाजी बिलकुल भी नहीं होनी चाहिए। कपड़ा आदि ओढ़ने की जो मर्यादाएँ हैं, उन्हीं मर्यादाओं का अनुसरण करना है। फिर वे चाहे अच्छी लगें या खराब। पसंद हो या नापसंद।

समूह क्रिया के लिए भी स्वयं बहुत आग्रही थे।

क्रियाओं की किलेबंदी

साधु जीवन के लिए दिन में जो कोई क्रिया अनिवार्य रूप से करना हो, वह प्रत्येक क्रिया वे समूह में कराते और उसमें विधि-मुद्रा आदि के बारे में बहुत ही सूक्ष्म मार्गदर्शन देते थे।

आत्मा पर छाए मोहनीय कर्म को नष्ट करने के लिए परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट सभी क्रियाएँ उत्तम उपाय हैं और उसके लिए पू. गुरुदेवश्री ने बहुत संशोधन भी किए। कौन सी क्रिया, किस मुद्रा में किस विधिसे कब करें ? इस प्रकार की छोटी से छोटी जानकारी प्राप्त करने के लिए भी वे सदैव तत्पर रहते।

खमासमणुं (वंदना) कहाँ और कैसे ? वांदणा (अहो कायं काय) में द्वादश आवर्त को किस प्रकार संजोएँ ? प्रतिक्रमण किस प्रकार करें ? इस प्रकार की कई जानकारियाँ बहुत जेहमत के पश्चात् उन्होंने प्राप्त की।

अरे ! मुहपत्ति का पडिलेहण (गौर से देखना) किस प्रकार करना चाहिए ? इसके लिए कई शास्त्रों, ग्रंथों को उलटा-पलटा और वृद्ध-महापुरुषों के पास जाकर जिज्ञासावृत्ति के साथ उसकी सीख प्राप्त की। पूज्य गुरुदेवश्री बताते थे कि मुहपत्ति का पडिलेहण यह देखकर रख देना कि उसमें कोई जीव-जंतु तो नहीं

है और उसे समझने के लिए उन्हें अठारह माह लगे थे...!

साथ ही क्रिया की जानकारी देने के लिए पू. गुरुदेवश्री विशेष अध्ययन करते और उसमें भी जो क्रिया चुस्त हो, उसके लिए खास ध्यान देते। परमात्मा का शासन चलता है निश्चय व व्यवहार के माध्यम से, लेकिन उसमें निश्चय साध्य है और वह अंतरंग मामला है। व्यवहार मुख्य अधिकार है व व्यवहार अवलंबित है क्रिया की बुनियाद पर। इसलिए वे मानते थे कि क्रियाचुस्तता व आचारचुस्तता साधु जीवन के प्राण हैं। साधु जितना आचार के प्रति प्रतिबद्ध होगा, वह उतना ही अधिक लोकल्याण करने में समर्थ होगा। आचार को दरकिनार कर व मर्यादाओं की अवहेलना कर प्रचार के लिए निकला साधु बेवफाई का दामन पकड़ लेता है, जो उसके लिए तथा दूसरों के लिए संकटप्रद ही रहता है। इसलिए जहाँ बेवफाई हो, वहाँ धर्म-लाभ की प्राप्ति भी हो सकती है, इस कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता है।

इसलिए यह अत्यंत लाभप्रद है कि व्यवहार शुद्धि के लिए साधु को क्रियाओं में चुस्तता बनाए रखनी चाहिए और मर्यादाओं के अनुशासन में उसे रहना चाहिए।

पूज्यश्री का जीवन आचार-संपन्नता से ओतप्रोत था। इसके प्रमाण स्वरूप कई घटनाएँ व वाकये है। उनमें से कुछ नमूने –

रथयात्रा में हम सब जुड़ गए थे।

मुझे आदत हो गई थी कि रथयात्रा या जुलूस में दांडा (एक प्रकार की लकड़ी) टिका कर चलना, इस प्रकार मैं तब दांडा टिका कर चल रहा था...

उस समय तो पूज्यश्री ने मुझे कुछ भी नहीं कहा...

लेकिन उपाश्रय पहुचने पर मुझे शांति से एक ओर बुलाया और कहा

'हेमचन्द्र! पैर में कुछ तकलीफ है?'

'नहीं, महाराजजी ! क्यों ?'

'रथयात्रा में आज तुम दांडा टिका कर चल रहे थे ?'

'जी, महाराजजी !'

'ठीक से देख कर ही दांडा टिकाते थे ? किसी जीवजंतु के ऊपर वह न आ जाय, इसका ध्यान रहता था तुम्हें ?'

मैं क्या जवाब दूँ। शर्म से मेरा मुंह नीचे हो गया।

फिर मेरे कंधे पर हाथ रख कर कहा कि बगैर कारण इस प्रकार नहीं देखने का क्या उपयोग ? जाओ अब ध्यान रखना।

मैं उठ कर मेरे आसन पर तो आ गया, लेकिन फिर मैं विचार करने लगा...

अजयणा (जीवजंतु की हिंसा) के प्रति कितनी नफरत ?

कितना सूक्ष्म अवलोकन ?

शीतऋतु थी

खिड़की से ठंडी हवा आ रही थी, इसलिए खिड़की बंद करने के लिए मैं खड़ा हुआ। ओघा से प्रमार्जन कर खिड़की बंद की... और फिर खिड़की न खुल जाय, इसलिए मैंने स्टॉपर लगा दिया...

मैं जैसे ही बैठने वाला था कि पूज्यश्री ने मुझे बुला लिया। मुझे कहा, "ओघा से प्रमार्जन कर खिड़की कर बंद की वह तो ठीक ही किया... लेकिन फिर स्टॉपर तो लगा दिया है ?"

'जी, हाँ' मैंने कहा...

'तब तुमने क्या यह देखा कि स्टॉपर का जो गड्डा था, उसमें कोई जीव-जंतु तो नहीं थे ?'

'उसे कैसे देखा जा सकता है'

'तो फिर स्टॉपर नहीं लगाना चाहिए।'

महाराजजी ! फिर तो खिड़की खुल नहीं

जायगी ?'

'डोरी का उपयोग करें'

'जी साहब !

लेकिन तब मुझे लगा कि जीव हिंसा न हो जाय, इसके लिए उनमें सावधानी कितने सूक्ष्म रूप में है।

समूह चैत्यवंदन करने के लिए मन्दिर गया था।

पूज्य गुरुदेवश्री की निश्रा में बड़ी संख्या में मुनिभगवंत साथ में थे।

तब मुझे छींक आई।

जब छींक आई तब मैंने मुँह के सामने कोई आड़ नहीं रखी थी।

चैत्यवंदन करने के पश्चात् हम सब उपाश्रय में गए...

कुछ देर के पश्चात् गुरुदेव ने मुझे बुलाया। मैं पूज्यश्री के पास पहुँचा... मुझे कहा-'आज मन्दिर में छींक तुम्हें आई थी ?'

याद कर मैंने कहाँ-'हाँ जी।'

तब तुमने मुँह के आगे कोई आड़ रखी थी ?

पुनः याद कर मैंने कहा-'जी नहीं।'

तब गुरुदेव ने मृदुभाव से निर्देश देते हुए कहा...

'देरासर में खाँसी, छींक या खँखार आए तब मुँह के आगे कुछ आड़ जरूर रखें... हमारे शरीर में कितनी गंदगी भरी हुई है ऐसे समय वह बाहर आए और मन्दिर में गिरे, वह मन्दिर का कितना बड़ा अपमान है ? इसका ध्यान रखें कि पवित्र मन्दिर में हमारी अपवित्रता न फैले।

'जी महाराजजी ! अब मैं ध्यान रखूंगा।'

परमात्मा की मात्र भक्ति ही नहीं करनी है बल्कि इस प्रकार की अवहेलना की स्थिति से भी बचना है।

यह पूज्यश्री का कितना सूक्ष्म अवलोकन है।

पूज्यश्री का स्वास्थ्य ठीक नहीं था।

ऐसी स्थिति नहीं थी कि सायंकाल का प्रतिक्रमण मांडली (क्रिया के लिए वृत्ताकार बैठना) के साथ किया जा सके...

इसलिए यही उचित था कि प्रतिक्रमण वहाँ न हो, जिस कमर में पूज्यश्री का संथारा था...

प्रतिक्रमण प्रारंभ हुआ...

इसके कुछ ही देर बाद बाहर के हॉल में सामूहिक प्रतिक्रमण भी प्रारंभ हो गया। समूह बड़ा था, इसलिए स्वाभाविक ही प्रतिक्रमण कराने वाले मुनिराज की आवाज़ कुछ तेज थी।

वह आवाज़ कुछ असह्य जैसी लग रही थी, इसलिए मैं कमरे के दरवाज़े को बंद करने लगा, जिससे आवाज़ का आना रुक जाय। तब पूज्यश्री ने मुझे ऐसा करने से रोका और संकेत दिया कि प्रतिक्रमण जारी रखा जाय।

प्रतिक्रमण पूरा हो गया, फिर मुझ से पूछा 'दरवाज़ा क्यों बंद कर रहे थे?'

'बाहर की आवाज़ से आपको असुविधा न हो इसलिए!' मैंने कहा।

'पागल! वह आवाज़ किस की थी?'

'सूत्रों की'

'वे सूत्र किसके?'

विचार कर मैंने कहा–'पूज्य गणधर भगवंत के'

'ठीक है तो इन एकांत कल्याणकारी सूत्रों की आवाज़ को सुनने का जो सद्भाग्य मिला है उसका स्वागत होना चाहिए या उसे रोकना चाहिए?'

मैं क्या बोलता! अहोभाव के साथ चुप हो गया।

साधुओं का समुदाय जब भी एकत्रित होता, तब पूज्यश्री इस प्रकार की वाचनाओं की स्थिति निर्मित कर ही देते और उनका उपरोक्त बात पर अधिक वजन रहता।

क्रियामार्ग की इतनी सूक्ष्म जानकारी देने वाला न कोई देखा न कभी सुना!

'शास्त्र-विहित-सूक्ष्मक्रिया-मार्गज्ञाता' विशेषण पूज्यश्री पर एक मुकुट की तरह शोभित रहा है।

मात्र साधुजीवन के लिए ही नहीं, बल्कि श्रावक जीवन में भी सामयिक-नवकारयुक्त व विशेष रूप से परमात्मा की पूजा आदि कैसे कैसे करना है ? किस पूजा का क्या उद्देश्य है ? उसका क्रम कौन सा था ? उसमें मंत्र व मुद्रा क्या होना चाहिए? इसे भी वे पर्याप्त रूप से स्पष्ट करते थे।

कोई भी जानकारी शास्त्र में मिल गई, इसलिए उसे तुरंत स्वीकार कर लें, ऐसा मंतव्य पूज्यश्री का कभी नहीं रहा। शास्त्र से प्राप्त विषय को वे स्वयं सुविहित अधिकारी, गीतार्थ आचार्य भगवतों के समक्ष प्रस्तुत करते और उनकी स्वीकृति मिलने के पश्चात् ही वे उस शास्त्र-पाठ का उपयोग करते। जब तक उसे परंपरा या मान्यता के रूप में घोषित नहीं किया जाता, तब तक वे स्वयं उसे आचरण में नहीं लेते थे, इस प्रकार की तीव्र पाप-भीरुता पूज्य गुरुदेवश्री में थी।

शंकराचार्यजी के उद्‌गार

संयम जीवन की छोटी से छोटी क्रिया के लिए भी पूज्यश्री सदा सजग रहते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री तब पाटण में बिराजमान थे, वहाँ तब शंकराचार्यजी पधारे। शंकरभाष्य के संबंधमें पूज्यश्री को कुछ जिज्ञासाएँ और कुछ शंकाएँ थीं। इस बारे में चर्चा करने के लिए पूज्य गुरुदेवश्री उनके पास पहुँचे। शंकराचार्यजी को मालूम हुआ तो वे स्वयं पूज्य गुरुदेवश्री को लेने के लिए उनके समक्ष पहुँच गए। जब स्थान पर पहुँचे तब वहाँ एक सुंदर आसन बिछा हुआ था। उस पर बैठने के लिए शंकराचार्यजी ने पूज्यश्री से अनुरोधकिया, लेकिन तब पूज्य गुरुदेवश्री ने अपनी आचार-मर्यादा के अनुसार उसके लिए इन्कार किया और अपने से आधा जमीन का प्रमार्जन कर अपने साथ लाए आसन पर विराजमान हो गए। पूज्य गुरुदेवश्री की यह क्रिया देख कर शंकराचार्यजी स्तब्धरह गए। यह दृश्य उनके मस्तिष्क में दृढ़ रूप से स्थापित हो गया। उस दौरान लम्बी

अवधितक दोनों विद्वानों के बीच विचार-विमर्श हुआ और उसके पश्चात् पूज्यश्री उपाश्रय चले गए, लेकिन तब पाटण में शंकराचार्य के प्रवचन के लिए एकत्र हुई विशाल जनमेदनी को संबोधित करते हुए स्वयं शंकराचार्यजी ने कहा था कि :

'आज हिंसा का साम्राज्य इतना अधिक व्यापक हो गया है कि उसकी कोई सीमा नहीं है। इसके पश्चात् भी आज देश में जो कुछ शांति महसूस होती है, वह भारत सरकार के प्रयासों के कारण नहीं, बल्कि जैनमुनि अभयसागरजी जैसे अहिंसक व विद्वान साधुओं के पुरुषार्थ के कारण होती है, जो इतने अधिक सतर्क रहते हैं कि छोटे से छोटे जीव-जंतु की भी किसी प्रकार की हिंसा न हो सके।' दृष्टांतों के द्वारा इस तथ्य को उन्होंने और अधिक स्पष्ट किया।

साधु-जीवन की आचारसंहिता के प्रति वे अधिक सजग तो थे ही, लेकिन उसकी व्यापकता में भी वृद्धि हो, इसके लिए उन्होंने श्रेष्ठ साहित्य का सर्जन भी किया है।

साहित्य यात्रा

साधु-जीवन संबंधी आचारसंहिता के लिए पूज्य गुरुदेवश्री का साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री की साहित्ययात्रा भी उल्लेखनीय है।

अपने जीवनकाल में उन्होंने १६० पुस्तकें-ग्रंथ लिखे हैं।

संपादित ग्रंथों की एक लम्बी शृंखला का उन्होंने सृजन किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री के साहित्य में मुख्यतः चार विषयों को विशेष रूप से समाहित किया गया है।

१. श्री नमस्कार महामंत्र से संबंधित जानकारी।

२. पृथ्वी की गति व आकार से संबंधित तथ्य।

३. साधु-जीवन की आचार-संहिता का विशद वर्णन व

४. जीवनोपयोगी विशिष्ट चिंतनधारा से संबंधित साहित्य

गुजराती भाषा की तरह संस्कृत-प्राकृत-हिन्दी भाषाओं में भी लेखन में पूज्यश्री को महारत हासिल हो गई थी।

साहित्य के इस प्रवाह में चाणस्मा के भटेवादादा व पार्श्वनाथ प्रभु की विरल जानकारियों से समृद्ध ग्रंथ, पूज्यपाद आगमोद्धारकश्री की अनूठी घटनाओं से प्रचुर आगम ज्योतिर्धर नामक दो विशाल ग्रंथ, आगम विज्ञान से संबंधित विविधलेखों से भव्य ग्रंथ व तत्त्वज्ञान स्मारिका आदि कई मूल्यवान ग्रंथों का सृजन कर पूज्य गुरुदेवश्री ने इस दुनिया को अमूल्य धरोहर प्रदान की है।

प्रसिद्धि के प्रति सदैव निरपेक्ष भाव

यद्यपि पूज्य गुरुदेवश्री बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न महापुरुष थे, लेकिन उनकी सबसे महत्वपूर्ण व अतिदुर्लभ उपलब्धिथी, उनकी निरपेक्ष वृत्ति ! इतने अधिक ग्रंथों के लिखने के पश्चात् भी अपने नाम की प्रसिद्धि के मोह से वे कोसों दूर ही रहे हैं। स्वयं की लिखी पुस्तकों के अंदर भी यदि पूज्य गुरुदेवश्री के नाम को ढूंढ़ने का प्रयास करें, तब लेखकीय या संपादकीय प्रकरण के अंत में आप उनका नाम पाएंगे और वह भी अत्यंत संक्षिप्त, केवल 'अभयसागर' और उससे अधिक कुछ भी नहीं।

अपने नाम का कम से कम प्रचार हो, यह पूज्य गुरुदेवश्री के व्यक्तित्व का अत्यंत स्पष्ट पहलू था।

जहाँ छोटे से काम के बाद भरपूर विशेषणों के साथ अपना नाम देने की लालसा सदैव रहती हो...कोई अधिकार व हक न बनता हो, फिर भी अपना नाम किसी प्रकार अंदर घुसा देने की ताक में रहते हों, ऐसे समय नाम व प्रसिद्धि की चाहत से कोसों दूर रहने वाले पूज्य गुरुदेवश्री को किन लफ्जों में सम्मानित करें? यही जटिल प्रश्न है।

जंबूद्वीप की अंजनशलाका का वाक्या तो अभी ताजा ही है। यह तो जगजाहिर है कि जंबूद्वीप मंदिर का निर्माण पूज्य गुरुदेवश्री की ही सिद्धि है । पूज्य गुरुदेवश्री हो और तब जंबूद्वीप बने, उसमें किसी को भी आपत्ति नहीं है।

अंजनशाला की उस घटना में प्रतिमा को सैकड़ों अंजन होने वाले थे और तब प्रतिमा पर शिलालेख लेखन की जवाबदारी परमकृपालु पूज्य गुरुदेव ने मुझे सौंपी थी वैसे भी गुरुदेवश्री मुझे बहुत प्यार-दुलार देते थे। जंबुद्वीप संबंधी मीटिंग हो और अगर हम दोनों साथ हो तो मीटींग में हमें निश्चित रुप से स्थान देते ही थे। लेकिन इस सूचना के साथ कि अपने पाँच आचार्यदेव के अलावा अन्य किसी का नाम नहीं लिखना है अर्थात् छठ्ठा नंबर स्वयं का ही था... इस प्रकार अपना स्वयं का नाम न आए, इस तरह की उसमें समाई सूचना भी उन्होंने स्पष्ट कर दी थी।

मात्र निर्देश ही नहीं, बल्कि पूज्यश्री की तेज नज़रें भी मुझ पर टिकी रहती थी कि हेमचन्द्र उनका नाम किसी तरह कहीं पर चिपका न दे।

फिर भी इस ऐतिहासिक घटना के साथ पूज्य गुरुदेवश्री का नाम भी संलग्न रहे, उस इच्छा को मैं दबा न सका और मैंने उनका नाम मूलनायक प्रभु की पीठिका पर प्रदर्शित कर ही दिया। लेकिन जब नाम उत्कीर्ण हो गया और उन्हें मालूम हुआ, तब मुझे बुलाया और कठोर शब्दों में मेरी परेड ले ली, मेरी सिट्टीपिट्टी गुम, लेकिन मैं मौन ही रहा...

पूज्य गुरुदेवश्री का सदैव एक ही संदेश रहता था कि प्रसिद्धि की लालसा एक खतरनाक नागिन है। इस नागिन की फुँकार से बच निकलना बहुत मुश्किल होता है। इसका जहर शिखर पर पहुँचे हुए इन्सान को भी नीचे गिरा देता है और उसे घायल कर चकनाचूर कर देता है, इसलिए अच्छा यही है कि इस नागिन से दूर ही रहा जाय।

जहाँ भी इस प्रकार की मजबूरी रही कि नाम लिखना अनिवार्य था, वहाँ भी अपने पूज्य गुरुदेवश्री के नाम के पश्चात् ही अपना नाम, लेकिन मात्र अपना अकेले का नाम तो कहीं पर भी नहीं होता था।

यह वृत्ति गुरुनिष्ठा की पराकाष्ठा को ही प्रदर्शित करती है और वैसा ही था भी। अपने पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति स्वयं का व्यवहार सदैव एक छोटे बालक का

ही रहा। इस मामले में स्वयं की विद्वत्ता, योग्यता, उच्चस्तरीय साधना आदि कुछ भी बीच में नहीं लाते थे। शिष्यत्व व सेवकत्व के अलावा अन्य किसी प्रवृत्ति से वे अपने गुरु से जुड़े हुए नहीं थे।

यह कोई छोटी बात नहीं है। लेकिन पूज्य गुरुदेवश्री के जीवन में सदैव सुस्पष्ट ही देखा गया।

शिष्य बनाने की लालसा से दूर

शिष्य बनाने की लालसा को तो वे चिकनी फिसलपट्टी ही समझते थे और उसके लिए उनका सदैव इन्कार ही रहता था।

कई भाग्यशाली पूज्य गुरुदेवश्री के पास अपने पूर्ण सांसारिक जीवन का त्याग कर व अपना जीवन पूज्य गुरुदेवश्री के चरणों में समर्पित करने के लिए पूरी तरह कृतनिश्चयी होते थे, लेकिन पूज्यश्री स्पष्ट इन्कार कर देते थे और अन्य पूज्यों का नाम बताते थे और वहाँ भेज देते थे। वे पूज्यश्री के शिष्यत्व के पूरी तरह योग्य थे, लेकिन आज वे अन्यत्र कहीं आराधना कर रहे हैं।

पूज्यश्री के आज जो पाँच शिष्य विद्यमान हैं, वे तो दादा गुरुदेव श्री महोपाध्याय श्री धर्मसागरजी के कारण ही हो सके है। यदि दादा के सामने उनकी चलती तो एक भी शिष्य उनका नहीं होता और उसकी प्रतीति इसी से हो जाती है कि पूज्य दादाश्री के जाने के पश्चात् दीक्षा लेने तो कई आए, समर्थ युवक भी आए, लेकिन फिर भी उन्होंने किसी को शिष्य नहीं बनाया। यदि प्रत्येक आगंतुक को पूज्यश्री ने शिष्यत्व प्रदान किया होता तो पूज्यश्री का शिष्यत्व का आँकड़ा अब तक बहुत बढ़ चुका होता।

इसके लिए पूज्य गुरुदेवश्री एक ही कथन बारंबार दुहराते कि "पहले मैं तो शिष्य बनूँ? मुझ में ही जब यथायोग्य शिष्यत्व विकसित नहीं हुआ है, तब मैं दूसरे को किस प्रकार अपना शिष्य बना सकता हूँ? दूसरे का गुरु किस प्रकार बन सकता हूँ?" इस प्रकार अपनी लघुता प्रकट कर वे मामले से दूर हो जाते।

इतने निषेधके पश्चात् भी आज ३२ साधुओं का परिवार है और मैं इसे अपना परम सौभाग्य मानता हूँ कि मुझे उसमें स्थान मिला है।

बिना किसी आडंबर के

पूज्य गुरुदेवश्री किस प्रकार के विरल व्यक्तित्व के स्वामी थे ? आचार्य के लिए जो गरिमापूर्ण हो, ऐसी संपूर्ण संपदा पूज्यश्री के जीवन के हर पहलू में समाई थी। दीक्षा पर्याय, तपस्या, शिष्य परिवार, विद्वत्ता, अनुशासन शक्ति, आगमिक विशारदता, निश्रावर्ती पुण्यात्माओं के लिए व योगक्षेत्र के लिए सक्रियता...

आचार्यपद की योग्यता के लिए उनके पास बहुत कुछ था, इसकी अपेक्षा यह कहना उचित होगा की उनके पास क्या नहीं था ?

पूज्य गुरुदेवश्री आचार्य पद से सुशोभित हों, यह सद्इच्छा मात्र सागर समुदाय की ही नहीं, बल्कि प्रत्येक समुदाय की थी। इसके लिए कई बार प्रत्यक्ष अनुरोधभी किया गया था।

मैं जैसे पहले ही बता चूका हूँ कि पूज्यश्री मानव की क्रोध व अभिमान की स्थिति से बहुत दूर ही रहते थे।

गणिपद व पंन्यासपद पाने के लिए कितनी साधना, तप की जरूरत रहती है कोई नहीं मानता है उसमें भी कितनी शर्तें ?

किसी भी प्रकार का दिखावटी या आडंबरयुक्त प्रदर्शन नहीं। अपने भक्तों को आमंत्रणपत्रिका भी नहीं, चिठ्ठी–पत्री भी नहीं...किसी भी प्रकार की कोई सूचना नहीं।

कपड़वंज में पूज्य गच्छाधिपति श्री मणिक्यसागर सुरिश्वरजी म. तथा अपने पूज्य गुरुदेवश्री के वरदहस्तों से संवत् २०२१ में जयेष्ठ कृष्ण पक्ष एकादशी को गणिपद कार्यक्रम संपन्न हुआ... अत्यंत साधारण व सादगी से... न किसी शहनाई के सुर और न ही मंडप में गहमागहमी।

मुझे मालूम है कि गणिपदवी होने के बाद भी लघुता कितनी... गणिपदवी विधिहोने के पश्चात् दीक्षापर्याय में स्वयं से वरिष्ठ व वयोवृद्ध पूज्य मुनि श्री बुद्धिसागरजी म. और पूज्य चन्द्रोदयसागरजी म. के पास पूज्यश्री गए, उस समय मैं भी साथ था। इन दोनों

मुनिराजाओं के चरणों को अपने हाथों से स्पर्श कर रहा कि 'आप दोनो को वंदन करना मेरे लिए कितना सौभाग्यशाली था ? इस पदवी की घंटी गले में पड़ी, इसलिए वंदन करने की किस्मत भी हाथ से छटक गई?'

किस प्रकार की लघुता ?

नरोडा में संवत् २०२९ के माघ माह में पूज्य गुरुदेवश्री के वरद हस्तों से पंन्यासपद स्वीकार किया, वह भी बिना किसी आडंबर के ! अहमदाबाद में भी इस समाचार को प्रचारित नहीं करने दिया।

पूज्य गणिवर्य श्री विमलसागरजी म. की पंन्यासपदवी भी उस समय ही उनके साथ संपन्न हुई थी।

आचार्यपद से अलगाव

आचार्यपद स्वीकार न करने के लिए वे अंत तक अडिग ही रहे। हम मजाक में कह भी देते कि फिर गणिपद और पंन्यासपद क्यों ग्रहण किया... उन्हें क्यों स्वीकार किया ? तब पूज्यश्री जवाब देते कि:

'इसमें तो मेरा ही स्वार्थ था । जब तक पंन्यासपद नहीं मिले, तब तक सर्व-आगमों के पठन की सहमति व अनुज्ञा नहीं मिलती है... मुझे आगमों का स्वाध्याय तो करना ही था। मेरे इस स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए पंन्यासपदवी को प्राप्त करने के अतिरिक्त कोई दूसरा विकल्प तो था नहीं । इसलिए पंन्यासपद तक मैंने कोई आग्रह नहीं रखा । लेकिन इसके पश्चात् अब आगे बढ़ने का मुझे कोई मोह या चाह नहीं है।

आचार्यपदवी ग्रहण करने के लिए कई बार मेरी सहमति मांगी गई, लेकिन एक बार जो निर्णय ले लिया सो ले लिया।

अरे ! जंबूद्वीप का प्राण-प्रतिष्ठा का समय कितना स्वर्णमय था। पूज्यश्री के व्यक्तित्व के प्रभाव से सागर समुदाय की प्रायः प्रत्येक संतान खिंच कर वहाँ उपस्थित हो गई थी और इस प्रकार वहाँ लगभग ९० साधु व ४५० साध्वी म. थे और इसके अतिरिक्त विशाल जनसमुदाय तो वहाँ था ही । अवसर का

अनूठापन पूज्यश्री की गरिमा को सब ओर फैला रहा था।

इस अवसर पर आचार्यपदवी मिलनी ही चाहिए और इसके लिए कई प्रकार के दबाव वहाँ आ रहे थे... लेकिन फिर भी इस कार्यक्रम के वहाँ कोई आसार नहीं दिख रहे थे।

महोत्सव पूरा होने के पश्चात् पूरे सागर समुदाय का एक त्रिदिवसीय स्नेह सम्मेलन का आयोजन किया गया और उस समय समुदाय का प्रत्येक व्यक्ति वहाँ उपस्थित था और प्रत्येक को अपने मन की बात कहने के लिए अधिकृत भी किया गया था। तब सबसे पहले वहाँ भी इसी मुद्दे को उठाया गया। आचार्यपद स्वीकार करने के लिए ९० ठाणों से एक स्वर में एक ही आवाज़ थी। यदि ऐसा न हो तो यह माँग थी कि अपने समुदाय में इस समय कोई उपाध्याय नहीं है। इसलिए कम से कम उपाध्यायपद तो स्वीकार कर ही लें। वह स्थिति अप्रितम थी।

सब ओर से हो रहे आग्रह का उत्तर देने के लिए पूज्यश्री ने सिर पर दोनों हाथों को रख कर कहा :

'समुदाय मेरे सिर आंखों पर। समुदाय की प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करने के लिए मैं सदा तत्पर रहा हूँ, लेकिन इतना अभागा हूँ कि इस आज्ञा को मैं स्वीकार नहीं कर सकता हूँ। मेरे समुदाय से मेरा करबद्ध निवेदन है कि इस संबंधमें मुझे कुछ भी नहीं कहा जाय। पद के लिए मैं जिस स्थिति पर हूँ, ठीक हूँ। इस मामले में आगे बढ़ने के लिए मैं पूरी तरह असमर्थ हूँ, लेकिन आप लोगों से मेरी यह भी प्रार्थना है कि हमारे समुदाय में उपाध्याय या आचार्य की संख्या में वृद्धि नहीं होने से यदि सामुदायिक अव्यवस्था निर्मित हो रही हो या समुदाय की मान-प्रतिष्ठा यदि इससे घुमिल हो रही हो तो मैं पत्थर बनकर रुकावट नहीं बनूंगा... आप मेरे अलावा कई सुयोग्य पंन्यासप्रवर हैं। मेरा पूज्य गच्छाधिपति व समुदाय से विनम्र अनुरोध है कि उन्हें पदवी में आगे लाया जाय! इतना ही नहीं इसके लिए मुझे जो भी जिस स्तर का भी योगदान देना होगा, मैं दूंगा और इसके लिए मैं सदा तत्पर हूँ।'

इसके पश्चात् वातावरण में शांति छा गई।

पूज्यश्री के व्यक्तित्व में यह गरिमा है कि पू. गुरुदेवश्री को दरकिनार कर, पचास-पचास वर्ष के दीक्षापर्याय वाले समर्थ पंन्यास प्रवरों ने भी अपनी अनिच्छा स्पष्ट प्रकट कर बता दिया कि श्री अभयसागरजी के स्थान पर उन्हें आगे बढ़ने में बिलकुल भी मोह नहीं है और हाँ फिर वह कार्यक्रम पदवी प्रदान प्रक्रिया से पूरी तरह अछूता ही रहा।

जल जैसा जीवन

इस प्रकार के किसी भी विरल व्यक्तित्व से जब रूबरू होते हैं, तब सहज ही मन में कल्पना उभरने लगती है कि यह व्यक्ति अत्यंत ही मितभाषी व अलग प्रकार का आसन जमाने वाला और बड़े-बड़े लोगों के बीच ही घुलने मिलने वाला होगा।

लेकिन इस मामले में पूज्य गुरुदेवश्री अपवाद थे।

पूज्य गुरुदेवश्री के संपर्क में आने वाले के लिए सब ओर के दरवाज़े खुले रहते थे। कोई भी व्यक्ति पूज्यश्री से मिल सकता था।

साथ ही पूज्य गुरुदेवश्री का स्वभाव भी रहा पानी जैसा। जैसा पात्र वैसा आकार। यदि कोई विद्वान व्यक्ति आता तो वे एक विद्वान लगते थे। यदि कोई साधक-योगी आता तो पूज्यश्री एक परमयोगी जान पड़ते थे। यदि कोई वैद्य या हकीम आता तो पूज्यश्री एक स्वास्थ्यवेत्ता की तरह लगते थे। ज्योतिषी के साथ ज्योतिषी बन जाते और... वैज्ञानिक्र के साथ वैज्ञानिक ही लगते थे।

वृद्ध के साथ वे पूर्ण गंभीर दिखाई देते थे, लेकिन यदि कोई वहाँ युवा उपस्थित हो जाय तो वे एक स्फूर्तिवान किशोर लगते थे और बालक के साथ वे एक सरल स्वभावी बच्चा ही बन जाते थे... मैं तो एक बालमुनि की तरह रहा हूँ न ? अरे ! पूज्य गुरुदेव की गोदी में कितनी ही नींद की झपकियाँ मैंने ली है...और तब पूज्य गुरुदेवश्री भी वैसे ही दिखाई पड़ते थे।

मतलब सिर्फ इतना कि उनका पूर्णतः आडम्बरहीन जीवन ही रहा। उनकी बहुत ही सीधी-सादी और सरल ज़िंदगी थी।

ऐसी ज़िंदगी के स्वामी पूज्य गुरुदेव की परछाई भी धूप की तीव्र गर्मी में एक घटादार वृक्ष की छाया का आभास देती थी।

इसके नज़दीक से गुजरने वाला भी अनुभव करता कि उसे किसी गुलमहोर का सामीप्य मिला है।

पूज्य गुरुदेवश्री के ऐसे विरल सान्निध्य को प्राप्त करना मात्र संयोग का खेल नहीं... बल्कि यह पुण्य की पराकाष्ठा का प्रतीक ही होता था।

मेरा असीम सौभाग्य

मेरे-हमारे इस भाग्य का आकलन किस प्रकार करुँ ? गौरव की इस गाथा के कितने गुणों का गान करुँ? बढ़ती युवावस्था के दौर में मेरे बड़े भाई गुरुदेवश्री अशोकसागरजी म. जिन्होंने उनका प्रथम शिष्यत्व पाकर ही अद्भुत सौभाग्य को प्राप्त किया था और उनकी बदौलत ही हम दोनों को बचपन में ही इस परम-प्रकृति की गोद में खेलने का अवसर प्राप्त हुआ और वर्षों तक उस गरिमामय सान्निध्य का लाभ मिला। यह कितनी प्रसन्नता की बात थी ?

सेवा प्रदान करने का वह कितना सुंदर समय था और वैयावच्च का वह कितना विरल समय था ? पाठ प्राप्त करने के वे कितने पावन पल थे और वाचना प्राप्त करने का वह कितना प्रिय दौर था ? उसकी स्मृति ही आज हृदय को सराबार कर देती है और उस गौरव के गान से ही गला गद्गद् हो जाता है।

अब तो ऐसा ही लगता है कि वह बचपन... वह अनभिज्ञता और व्याख्यान देने की कला की कोई समझ नहीं, निश्चित ही वह सब मीठे आशीर्वाद जैसा ही था।

अच्छा ही होता यदि तब मालूम नहीं होता कि व्याख्यान कैसे दिया जाता है ?

इसीलिए यदि व्याख्यान देना ही नहीं सीखा होता तो फिर व्याख्यान देने की जवाबदारी भी नहीं

सौंपी जाती और फिर पूज्यश्री से दूर चातुर्मास बिताने की घड़ी भी नहीं आती।

सदैव सान्निध्य ही मिलता रहता।

सदैव सौभाग्य ही बरसता रहता।

सुखद निर्णय

हाँ, पूज्यश्री से दूर रहना बहुत ही कठिन था। पूज्य गुरुदेवश्री का सान्निध्य किसी भी प्रकार से प्राप्त हो जाय, यह सबकी अदम्य इच्छा रहती। लेकिन कोई न कोई कारण उपस्थित हो ही जाता, जिससे दूर होना ही पड़ता। दूर होना ही पड़ता...

लेकिन संवत् २०४२ की चैत्र शुक्ल पक्ष की पंचमी को चाणस्मा में उस परम-पुण्य हस्ती के वरदहस्तों से पूजनीय बड़े भाई श्री जिनचन्द्रसागर म. के साथ गणिपद प्राप्त करने का परम पावन स्वर्ण अवसर आया और उस समय पूज्यश्री का लगभग समस्त परिवार एकत्रित हो गया था। तब सब ने पूज्यश्री से अनुरोध किया कि आगामी वर्ष में तो हम सब का चातुर्मास आपकी निश्रा में ही रहे और तब हमें सेवा व वाचना का लाभ मिले।

इसके लिए क्षेत्र के रूप में पालीताणा का चयन हुआ।

परंतु पूज्य गुरुदेवश्री ने तब निर्दोष गोचरी-पानी की समस्या प्रस्तुत की। इसका भी हल निकाला कि अपने समूह के ही परिचित श्रावकों को इस चातुर्मास की जानकारी दे दी जाय, जिससे बड़ी संख्या में श्रावक परिवार चातुर्मास करने के लिए आएंगे और तब उनकी निज़ी व्यवस्था में से ही हमारी समस्या का निदान भी मिल जायगा।

इस निर्णय से सब आनंदित तो हो गए, लेकिन पूज्य गुरुदेवश्री के बारंबार अस्वस्थ रहने से पूज्यश्री के आरोग्य के प्रति सब चिंतित भी थे।

अलबत्त, पूज्यश्री स्वयं ही स्वस्थ हो जाते... लेकिन दिल में दहशत तो रहती थी कि ऐसा क्यों ?

चारूप में पूज्यश्री के लगातार तीन बरसी तप

के पारणा का प्रसंग था, तब वैशाख शुक्ल पक्ष प्रथमा व द्वितीया को उनका रक्तचाप एकदम बढ़ गया।

पाटण से आए डॉक्टर ने भी जब चिंता व्यक्त की तब हमारी व्यग्रता बढ़ गई... जब...कि... वैशाख शुक्लपक्ष तृतीया को तो सुबह पूज्य गुरुदेवश्री बिना किसी भी दवाई के सेवन के पूरी तरह स्वस्थ हो गए... और तीन-तीन बरसीतप के पारणे में पूज्य गुरुदेवश्री ने इतने कठिन अभिग्रह धारण किए थे और वे सब हमारे दिमाग की क्षमता से बाहर ही थे...

अभिग्रहों की चार बार गवेषणा की, तब दोपहर १२.३० बजे अभिग्रह पूर्ण हुए और अभिग्रहों के पूर्ण होने पर पूज्यश्री ने अभिग्रह किया है, उसे किस प्रकार धारण करना चाहिए आदि के बारे में अति सुंदर व चिंतनीय-माननीय व्याख्यान दिया और उसमें खेमर्षि मुनि का उदाहरण देकर अपनी लघुता को दूर किया...

इसलिए पूज्यश्री अस्वस्थ तो थे, लेकिन फिर स्वयं ही परिपूर्ण स्वस्थ भी हो जाते थे...

फिर भी एक बार मैंने हँसते-हँसते पूछ ही लिया। गुरुदेव के साथ बैठक की वह अंतिम रात थी और तब हम दो भाई और मात्र गुरुदेवश्री ही थे और तब वह बैठक रात्रि के नौ बजे से दो बजे तक चलती रही और तब मैंने पूछा :

'महाराजश्री। आपश्री बार-बार क्यों बीमार हो जाते हैं ? हम जब दूर होते हैं, तब हमें कितनी चिंता हो जाती है ? हमें अब आपके साथ ही रखिए ? आपकी निश्रा में आगमिक अभ्यास की चाह भी कितने समय से है।'

सुखप्रद आगाही

तब पूज्यश्री ने जवाब दिया -

'इसकी आपको कोई चिंता नहीं करनी चाहिए... तेरह वर्षों तक तो मैं अभी हूँ। मेरे स्वास्थ्य के बारे में कोई समाचार जब मिले तो दूसरी चिंता न करते हुए आप लोग अधिक से अधिक नवकार मंत्र का जप करें। यही मेरी दवा है और यही मेरा उपचार

है। और हाँ हेमचन्द्र। इस बार डेढ़ माह के सहवास में मुझे आप व आपका परिवार अत्यंत सुयोग्य लगा है। इस बार इन्दौर में चातुर्मास कर आ जाओ, फिर पाँच वर्ष तक मैं तुम्हें मेरे साथ रखूँगा और आगम व अन्य विषयों का अभ्यास कराऊँगा।'

पूज्यश्री के इस जवाब से हमारे हृदय को बहुत संतुष्टि मिली...

इसी आश्वासन के बल पर विभिन्न टुकड़ियाँ पूज्यश्री के आशीर्वाद प्राप्त कर वहाँ से विदा हुई...

अपनी अप्रतिम उपकारी माता-साध्वी श्री सद्गुणाजी म. को उनकी ढ़लती उम्र में अपने मुख से आराधना कराने के लिए पूज्य गुरुदेवश्री ने यह चातुर्मास ऊँझा में ही किया। पूज्यश्री की बहन म. परमत्यागी साध्वी श्री सुलसाश्रीजी म. आदि का विशाल साध्वी समुदाय भी वहीं था।

माता साध्वीजी को पूज्य गुरुदेवश्री प्रतिदिन आराधना कराते थे। इसके पश्चात् पूज्यश्री के संपर्क का माध्यम सबको मिलता रहा...।

चातुर्मास में पूज्यश्री परम प्रसन्नता के साथ बर्ताव कर रहे थे। सबके साथ पत्रव्यवहार कर रहे थे और पूछे गए प्रश्नों के समाधान-मार्गदर्शन-आदेश आदि भी दे रहे थे।

मेरी द्वारा लिखी जाने वाली गुजराती पुस्तक 'क्यूं कर भक्ति करुँ ?' की सामग्री मैं पूज्यश्री को भेजता था। पूज्यश्री उसमें आवश्यक सुधार आदि कर वे उसे पुनः भेज देते और साथ ही उचित मार्गदर्शन भी देते थे।

पर्यूषण में क्षमा-याचना के पत्र सबको व्यक्तिगत रूप से प्राप्त हुए थे।

घातक घात

अंत में पूज्य गुरुदेवश्री का पत्र प्राप्त हुआ कि 'चातुर्मास' के पश्चात् सूरी पुरन्दर परमज्ञानी पूज्य हरिभद्रसूरीश्वरजी म. के साहित्य के संबंधमें एक शिविर आयोजित करना है और उस महान व्यक्ति के जीवन-निर्माण-रचना आदि के बारे में एक भव्य ग्रंथ

भी प्रकाशित करना है.. इसलिए चातुर्मास के पश्चात् तुरंत ही इस ओर आ जाओ।'

इस बताए गए कार्य को ध्यान में रख कर पूज्यश्री की निश्रा प्राप्त करने की हम सब तैयारी कर रहे थे...आश्विन कृष्ण पक्ष अष्टमी की क्रूर रात्रि को हृदय विदारक समाचार मिला कि पूज्यश्री को लकवा हो गया है और उनकी वाणी पूरी तरह बंद हो गई है।

यह समाचार सुनने के साथ ही, बिजली जैसा आघात लगा और दिल बेचैन हो गया... चित्त पूरी तरह शून्य बन गया। 'ओह ! यह क्या हो गया ?' विचारों का सतत प्रवाह चालू हो गया...! नवकार का जप चालू हो गया... तत्काल श्रावक गये और वहाँ से भी आए, लेकिन समाचार संतोषप्रद नहीं मिले... बारंबार ऐसा ही लगता रहा कि उग्र विहार चालू कर दें और पूज्यश्री की सेवा में पहुँच जाय..

लेकिन चातुर्मास मर्यादा की मात्र बीस दिन की अवधि सबके लिए अवरोधक बन रही थी...

नवकार का अखण्ड जप प्रारंभ कर दिया।

पालीताणा में बिराजमान पूज्य आचार्यदेव श्री सूर्योदयसागरसूरीश्वरजी म., सूरत में बिराजमान पूज्य गणिवर्यश्री अशोकसागरजी म. तथा पूज्य गणिवर्य श्री निरूपमसागरजी म., राजकोट में बिराजमान वरिष्ठ भ्राता पूज्य गणिवर्य श्री जिनचन्द्रसागरजी म., चाणस्मा में बिराजमान सोमशेखरसागरजी म., पाटण में बिराजमान पूज्य रत्नशेखरसागरजी म., खंभात में बिराजमान पूज्य नरचन्द्रसागरजी म. आदि सबकी एक जैसी लाचारी की स्थिति थी... सभी पूज्यश्री के पास आने के लिए तरस रहे थे।

लेकिन चातुर्मास की जंजीरों ने सबको जकड़ रखा था।

जहाँ-जहाँ समाचार पहुँचे सब जगह तप-त्याग और श्री नवकार के सतत जप चालू हो गए।

लेकिन फिर भी... हम सब अंदर से आश्वस्त थे... क्योंकि पूज्यश्री इस प्रकार से कई बार पहले भी अस्वस्थ हुए थे। लेकिन श्री नवकार के प्रताप से वे

स्वयं ही स्वस्थ हो जाते थे और इस बार तो उन्होंने स्वयं ही तेरह वर्षों की आगाही की थी... लेकिन इस स्थिति में धैर्य भी हम किस प्रकार बनाए रखें ?

पूज्यश्री के समाचार प्राप्त करने के लिए लगातार प्रयास प्राप्त करने के पश्चात् भी टेलिफोन सेवाएँ अखिल भारतीय स्तर पर आधी-अधूरी ही रहीं। फिर भी समाचार कुछ-कुछ प्राप्त होते रहे।

पूर्ण संयमनिष्ठा

जो समाचार प्राप्त हो रहे थे, उनमें पूज्यश्री की संयमनिष्ठा की झलक भी मिल रही थी और वह भी पूज्यश्री की ओर सबको बलात् आकर्षित कर रही थी।

लकवा हुआ। आवाज़ बंद हो गई व आहार भी अपने मुंह से न लेने की स्थिति में होने के बाद भी पूज्यश्री की जागृतदशा पर न्योछावर हो जाएँ, ऐसी मनोदशा हो गई थी।

सामान्य लकड़ी के पाट पर पूज्यश्री का उपचार ठीक से नहीं हो सकता था, इसलिए डॉक्टर की सलाह के अनुसार पूज्यश्री को जब कम्फर्टेबल बेड पर लिया गया, तब उन्होंने बेहिसाब रुदन किया।

नीचे लगाई डनलप फोम की गादी और तकिए को दूर करने के लिए पूज्यश्री बारंबार संकेत कर रहे थे, लेकिन उपचार को ध्यान में रखते हुए भक्तवर्ग उसे उचित नहीं मान रहा था। लेकिन पूज्यश्री उसकी पीड़ा सतत भोगते रहे।

फल या सूखे मेवे का कभी भी उपयोग नहीं करने वाले पूज्य गुरुदेवश्री को जब डॉक्टर की सूचना के अनुसार मोसंबी आदि का रस नली द्वारा दिया जाता था, तब पूज्यश्री नज़रें ऊँची कर देख लेते और सजल आँखों से बाएँ हाथ के द्वारा जिसमें चेतना थी, उससे ओघा उठाकर शिष्य-भक्तों को संकेत करते। इससे वे बताते कि क्यों मुझे भ्रष्ट कर रहे हो... पचपन साल का मेरा चारित्र जीवन इससे मलिन हो रहा है... मुझे ये दोष रास नहीं आ रहे हैं... क्यों यह दोष दोषित आहार उड़ेले जा रहे हो ?

दवाई और पूज्य गुरुदेवश्री में ३६ का आंकड़ा

ही रहता था। ऐसी स्थिति में जब कोई भी दवाई दी जाती थी, तब पूज्यश्री मात्र नफरत ही नहीं क्रोधभी प्रदर्शित करते थे...।

अरे ! एक बार तो रोष इतना अधिक था कि उनका निष्क्रिय अंग भी चेतनामय बन गया...

जब ग्लूकोज चढ़ाने की जरूरत महसूस हुई तब डॉक्टर ने सोचा कि दायाँ अंग खाली है इसलिए उस ओर से सिरिंज लगाने पर पूज्यश्री को अहसास भी नहीं होगा और आसानी से ग्लूकोज दिया जा सकेगा, लेकिन जब सिरिंज को तैयार कर लगाया, तब अचानक पूज्यश्री की नज़र उस पर पड़ी वे रोष में आ गए और दाएँ हाथ से जार से झटका दिया और सिरिंज निकाल दी।

जिस डॉक्टर ने सिरिंज लगाई, उस डॉक्टर के ही उद्गार थे कि :

'यह किस प्रकार संभव हो गया ? निष्क्रिय हाथ में चेतना किस प्रकार झलकी ?'

निर्दोष... सैद्धांतिक व आचारचुस्तता के प्रति पूज्यश्री की जागरूकता उनके जीवन में किस प्रकार ओतप्रोत थी... उन तथ्यों को ये उदाहरण स्पष्ट करते हैं।

दवाई की तवाही

पूज्यश्री दवा लेने के प्रखर विरोधी थे, फिर भी ऊँझा संघ पूज्यश्री के प्रति अतिशय रागी बल्कि वात्सल्यविभोर था। सदैव एक पैर पर खड़े...। छोटे क्या और बड़े क्या, बालक, युवा, वृद्ध सभी पूज्य गुरुदेवश्री के लिए सदा हाजिर...। जिस प्रकार एक माँ अपने पुत्र का उपचार कराती है उसी ढ़ंग से ऊँझा के संघ ने तीमारदारी प्रदर्शित की। किसी बात की कमी नहीं व किसी वस्तु का स्तर निम्न नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री इस प्रकार अस्वस्थ और भक्तों की भारी भीड़ ? रोज बस, मेटाडोर व कारें आती थीं। सैंकडो़ं की संख्या में भक्तों का आगमन जारी ही रहता था। एक माह तक ऊँ झा के श्रीसंघ ने बिना कुछ योजना-आयोजना के धार्मिक-भक्तिपूर्ण वातावरण

का अपूर्व लाभ लिया और इसमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है । उस श्रीसंघ की साधार्मिक भक्ति से जो लाभान्वित हुए हैं, उनके मुंह से निकले ये उद्‌गार हैं।

'निश्चित ही ! ऐसी विरल विभूति को वेयावच्च (संतों को सेवा प्रदान करना) प्रदान कर ऊँझा श्रीसंघ ने असीमित पुण्य का भंडार उपार्जित कर लिया है । यह संघ, संघ के अग्रणी, वरिष्ठ, युवा व इसके बाल-किशोर सभी धन्य हैं।'

अस्वस्थता व पराधीनता की ऐसी स्थिति में पूज्य गुरुदेवश्री आवश्यक क्रिया के प्रति किंचित् भी लापरवाह नहीं थे... दूसरा हाथ साथ नहीं देता था... फिर भी एक ही हाथ से मुंहपत्ति का पडिलेहण पूज्यश्री स्वयं ही करते थे।

छोटी से छोटी क्रिया भी उसी मुद्रा में करने के लिए पूज्यश्री का आग्रह रहता था।

सवेरे सज्झाय करने का समय होता था और सज्झाय के समय बाएँ कंधे पर ओढ़ने के लिए बड़े कपड़े का होना जरूरी होता है... लेकिन साथ का साधु असावधानी से वह कपड़ा रखना भूल गया। इसलिए स्वयं ने चौथाई घंटे तक समझाया फिर भी उसने नहीं किया... बारंबार कपड़े की ओर इशारा करते गए, अंत में साथ के साधुओं को इसका अहसास हुआ और तब कपड़ा रखा और फिर उन्होंने सज्झाय की।

संभव है, इस प्रकार की घटनाएँ बिलकुल क्षुद्र लगती हों, लेकिन पूज्यश्री हर छोटी से छोटी बात के लिए कितने जागृत रहते थे और, सदाचार पालन के मामले में आंतरिक रूप से कितने सुदृढ़ थे, इसे ये घटनाएँ स्पष्ट करती है।

ऐसे-ऐसे समाचार मिलते कि दिल में दर्द होने लगता था और मन ही मन चिढ़न होती कि कितने दुर्भाग्यशाली हैं हम कि सेवा के इस समय यहाँ पाँच सो किलोमीटर दूर चिपके हुए बैठे हैं...

शतशः धन्यवाद उन तपस्वी मुनि श्री अमीसागरश्री म., मुनिश्री पुण्यशेखरसागरजी, मुनिश्री अनुपमसागरजी, मुनिश्री कुलचन्द्रसागरजी,

मुनिश्री विजयचन्द्रसागरजी व मुनिश्री विवेकचन्द्रसागरजी को जो सेवा का यह स्वर्णरस प्राप्त कर रहे हैं।

बिजली की चमक

समाचार के सतत चले आ रहे प्रवाह में एक शुभ पल तब आया, जब मालूम हुआ कि पूज्यश्री स्वस्थ होते जा रहे हैं और आवाज़ भी कुछ खुली है... तब संपूर्ण प्रसन्नता के साथ अकल्पित आनंद का अनुभव हुआ...

तब पूज्य गुरुदेवश्री का उनका पहले दिया गया वचन याद आया 'तैरह वर्षों तक मुझे कुछ भी होने वाला नहीं है।'

इस वजह से सूरत में गुरुदेवश्री ने राहत अनुभव की और तय किया कि चालू उपधान पूर्ण कर विहार करना आरै उनके आदेशानुसार (गुरुदेवश्री का स्पष्ट आदेश है कि) मांडवगढ़ तीर्थ में उपधान कराना। पूज्यश्री के पास पहुँचने की तीव्र इच्छा रखने से अधिक महत्व पूज्यश्री के आदेशों के पालन का हो। इसलिए जल्दी से जल्दी के मुहूर्त में उपधान की तैयारी हो गई। लगभग ढ़ाई सौ नाम भी आ गए।

इसलिए इन्दौर चातुर्मास पूरा कर मांडवगढ़ की ओर विहार शुरु किया। लेकिन...

पहले ही मुकाम पर समाचार मिला कि पूज्य गुरुदेवश्री की अस्वस्थता फिर अपना प्रभाव दिखा रही है, इसलिए मन में व्यग्रता... अब तो चातुर्मास नहीं... इसलिए तुरंत निर्णय लिया कि उपधान तो बाद में भी हो जायेगा, लेकिन सेवा का मोका क्यों चूके?

दर्दीला घाव

उपधान के मुहूर्त में चार ही दिन का अंतर था, फिर भी दैनिक समाचारों के द्वारा उपधान को मुलतवी रख हम छः व्यक्तियों ने उग्र विहार आरंभ किया...

दूसरी ओर पालीताणा से पूज्य गणिवर्य निरूपमसागरजी म., अहमदाबाद से पूज्य गणिवर्य श्री कल्याणसागरजी म., राजकोट से पूज्य गणिवर्य श्री जिनचन्द्रसागरजी म. व खंभात से मुनि श्री नरचन्द्रसागरजी ने ऊँझा की ओर विहारकूच प्रारंभ

की। पाटण व चाणस्मा की टुकड़ियाँ तो पूज्यश्री के पास पहुँच भी गई...

सूरत में निर्णय लिया था कि उपधान पूरा हो और तुरंत विहार हो और इसलिए हमने बगैर कुछ सोचे विहार की अवधि बढ़ा दी। तीन दिनों में १०६ किलोमीटर चल कर राजगढ़ पहुँच गए।

और वह दिन था कार्तिक कृष्ण पक्ष नवमी का.

निर्मोही नवमी की निशाचारिणी ने निर्दयतापूर्वक हमारे नूर को निचो लिया और हमारी सूझबूझ का हरण कर लिया।

उस राक्षसी रात्रि ने वह आततायी आक्रमण इस प्रकार किया...कि उसके जल्लादी जख्म आज भी तीखी चीस की तरह स्मरण करा देते हैं ओह ! पूज्य गुरुदेव...! आपने क्या किया ? निराधार रख कर कहाँ चले गए ? पूज्य गुरुदेवश्री ? और किसी पर नहीं बल्कि इन किशोरों पर ही आपने धोखे की कटार चला दी...?

भगवंत...! भन्ते...! कहाँ गई वह आपकी आगाही और कहाँ गया वह आपका आश्वासन ? आपका तेरह वर्ष के बारे में दिया गया वचन किस प्रकार वाष्प बन कर उड़ गया ?

ज़िन्दगी में जो व्यथा कभी नहीं अनुभव की थी, उसे भी भोगना पड़ा... जिस दर्द से कभी सामना नहीं हुआ था, उसे तब तीव्रता से महसूस किया और किसी तरह जीव को हाथ में रखा...

परन्तु...

ऐसा क्यों हुआ ?

गुरुदेव द्वारा कही गई आगाही का धूमकेतु बारंबार एक तेज हंसिए की तरह आँखों के सामने चमकता रहता।

ऐसा क्यों हुआ ?

इसका निदान पाने के लिए अंतिम समय उपस्थित रहे शिष्य-भक्तों के समूह के साथ संपर्क हुआ, उत्सुकता जाहिर की तब तो स्पष्टता हुई... उसमें से निराकरण मिला कि...

पूज्यश्री जाने वाले तो थे नहीं। यह तो पूज्यश्री स्वयं जानते थे और इसीलिए आगाही भी की थी... और आज तक कोई भी आगाही निष्फल गई हो ऐसा हुआ ही नहीं... दूसरे के लिए की गई आगाहियाँ जब सत्य सिद्ध हुई हैं तो स्वयं के लिए की गई आगाही के बारे में यदि सन्देह हो तो निश्चित ही उसे शंका करने वाले का मन्दभाग्य ही समझा जाना चाहिए।

निश्चित ही पूज्यश्री तेरह वर्ष रहने वाले थे, लेकिन अंत में हो रही असंयमितता-शिथिलता और ज़िन्दगी में जिनका कभी आचरण न किया हो वैसे अतिचारों से उनका हृदय बोझिल हो जाता था। स्वयं को मिला शरीर भी जब बराबर साथ देने में असमर्थता महसूस कराने लगा, तब पूज्यश्री को यही मुनासिब लगा...।

ओह... यह कैसी स्थिति ? ऐसे अतिचारों की शिथिलताओं में से गुजरना ? निष्ठापूर्वक चारित्रपालन के द्वारा साधा गया यह शरीर भी कैसा विश्वासघाती निकला ?

साधना की कीमत पर यह जीवित शरीर फिर किस काम का... शिथिलाचार से निर्मित इस शरीर की कौन सी चिंता... नहीं सहन होता यह शरीर... अतः पूज्य गुरुदेवश्री ने बलात् श्वासोच्छ्वास की धौंकनी को चलाया और आधे घंटे में ही आयुष्य की चादर को समेट लिया और देह का त्याग कर दिया... और किसी नई देह को धारण कर साधना मार्ग पर आगे की कूच आरंभ कर दी।

इसे मात्र कल्पना की कड़ियाँ या भावोवश का पागलपन समझेंगे...।

पूज्यश्री के जीवनकाल के दौरान अनुभव में आई घटनाएँ, उनके ही मुख से सुनी बातें और समय-समय पर विचित्रतापूर्ण लगते पूज्य गुरुदेवश्री के व्यवहार प्रत्यक्ष आगाहियों की ओर इशारा करते हैं...

पूज्यश्री ने शरीर बदला है। स्वयं आज भी वे मौजूद हैं। साधना के सोपान पर आज भी वे अग्रेसर हैं।

किस्मत में छिद्र

लेकिन...होगा...सब कुछ होगा... और सारी बातें सच ही हैं, लेकिन पूज्यश्री तो हमारे अनुभव व चर्मचक्षुओं से तो दूर हो ही गए हैं न? हमें मिलती प्रेरणाएँ, वाचनाएँ और सक्रिय आदर्श तो अदृश्य हो गए हैं और यह व्यथा क्या सामान्य स्तर ही है।

पूज्यश्री के विरह की शूल-वेदना तो सहन करनी ही होगी...?

जीवनयात्रा के बीच सफर में मात्र ६३ वर्ष की उम्र में ही पूज्यश्री पधार गए... हमारी आस मन की मन में ही रह गई।

किस्मत के पात्र में यदि छेद हो तो उसमें आशाओं का अमृत कैसे टिक पायेगा ? लगता यही है कि भूतकाल में हमसे हुई आराधना की कमी ने ही हाथ में आए रतन को हम से छीन लिया...

और वह अंतिम...

ऊँझा के श्रीसंघ और बाहर से हजारों की संख्या में पधारे पूज्य गुरुदेवश्री के भक्त-समुदाय ने पूज्यश्री किसके है। यदि दादा के सामने उनकी चलती तो एक भी शिष्य उनका नहीं होता और उसकी प्रतीति इसी से हो, पार्थिव देह का हृदय की आंतरिक भावनाओं से स्वागत किया और देह विमान को पूर्ण भव्यता के साथ पालखी में रखा... मानो किसी शूरवीर साधक की साधना-सवारी निकलने वाली हो...

वह दृश्य वास्तव में हृदयद्रावक था...

एक-एक हृदय व्यथा से संतप्त था... एक-एक मुख से आक्रंद के स्वर फूट रहे थे... एक-एक आँख से अश्रुधारा बह रही थी।

दो वर्ष के अकाल से प्यासी ऊँझा की धरती को मानों आँख से आँसुओं से ही सिंचित करने के लिए पूज्यश्री ने इस तप यात्रा का आयोजन किया था...

ऊँझा का प्रत्येक नागरिक उस दिन उदास था। नगर में कोई भी बाजार... कोई भी दुकान यहाँ तक कि पान-बीड़ी की कोई गुमटी भी नहीं खुली। शोकातुर हृदय आज कैसे उन नागरिकों को कमाने के लिए प्रेरित करे ?

आठ वर्ष पूर्व दादा गुरुदेव शासन ज्योतिर्धर महोपाध्याय श्री धर्मसागरजी म. के पार्थिव देह ने जहाँ विदाई ली थी, उसकी बगल में ही उनके सपूत ने विदाई ली।

वही स्टेशन रोड़

वही स्टेशन मंदिर

उसी स्थान पर पिता-गुरु की समाधि

उसी स्थान पर पुत्र-शिष्य की समाधि...

हजारों की संख्या में मानव समुदाय उमड़ा हुआ था। पूज्यश्री के अंतिम दर्शनों के लिए विशाल भीड़ एकत्रित हुई। कार्तिक कृष्ण पक्ष दशमी की संध्या को पूज्यश्री के ऊँझावासी परम भक्त गण... तथा श्री शांतिचंद हजारी, श्री अमरचन्द झवेरी, श्री अरविंदभाई झवेरी, श्री रजनीभाई देवड़ी, श्री रतिभाई झवेरी, श्री जयंतीलाल मास्तर, श्री सुमनभाई संघवी, श्री हसमुखभाई एन. शाह, श्री खीमजीभाई छेड़ा... आदि विशाल वर्ग ने स्वयं की स्व-राशि के त्याग द्वारा पूज्यश्री की अंतिम विधि को ससम्मान पूरा किया। वहीं पूज्यश्री के भव्य-स्मारक के निर्माण की घोषणा की गई... और तब दान की बदलियाँ तेजी से बरसने लगी।

अंतिम पलों में प्रज्वलित हुई चिनगारियों ने भोर सुबह तक मानों पूज्यश्री के असत्य तत्त्व को राख में तब्दील कर तत्त्व की धूम्ररेखा में परिणीत कर दिया... उर्ध्वमार्ग से विदाई हो गई...

हमारी आँखों में पूज्यश्री को ओझल बनाने वाले वे क्रूरतम क्षण.

धिक्कार है तुम्हारी निर्दयता को

धिक्कार है तुम्हारी क्रूरता को

शत-शत बार धिक्कार है

तुम्हारी प्रत्येक दुष्ट अदा को....

•

जिन्हें हम
अद्भुत या चमत्कार से
अधिक कुछ नही कह सकते,
ऐसी ही कुछ कड़ियाँ, चलिए
उन्हें निहारें

एक

कई बार पूज्य गुरुदेवश्री के पास कोई जानकार भाग्यवान आता और जब उस व्यक्ति के साथ चर्चा चलती तब पूज्य गुरुदेवश्री बताते कि:

'साधना के मार्ग पर हम जैसे-जैसे आगे बढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे शरीर में भी परिवर्तन होता रहता है और उसकी शुरुआत शरीर से होती है शरीर का प्रत्येक दूषित परमाणु दूर होता है जिससे दिव्यता में वृद्धि होती रहती है...

इस प्रक्रिया में जिस अंग का क्रम आता है वह अंग फिर पूरी तरह निर्बल बन जाता है। उसकी शक्ति कम हो कर बहुत क्षीण हो जाती है उस अंग पर छोटा घाव भी हो तो वह भी बड़ा रूप ले लेता ही है। पीड़ा भी तब बहुत होती है लेकिन फिर भी चिंता नहीं करना है जप के बल से वह पीड़ा स्वमेव ही दूर हो जाती है... दवाई लेने की बिलकुल भी जरूरत नहीं रहती है...'

पूज्य गुरुदेवश्री के मुख से सुनी इस पूरी प्रक्रिया को पूज्य गुरुदेवश्री के जीवन में स्पष्ट रूप से घटते हुए देखा है।

मुझे याद है कि आज से २७ वर्ष पूर्व पूज्य गुरुदेवश्री के पैर बहुत ही कमजोर थे। छोटा सा काँटा या कंकर भी यदि चुभ जाय या हल्की ठोकर भी लग जाय तो उसकी पीड़ा भी असह्य बन जाती थी... छोटे से काँटे से भी एकदम सूजन आ जाती और फिर उसकी वेदना को लम्बी अवधितक भोगना पड़ता... फिर भी दवा का कोई जिक्र ही नहीं? बिना दवा के ही सूजन उतर जाती और वेदना विलीन हो जाती।

कई बार तो पूज्य गुरुदेवश्री स्वयं ही आगाही कर देते कि फलां दिन यह पीड़ा समाप्त हो जायगी... और होता भी ऐसा कि अवधिमें बीमारी से मुक्ति मिल ही जाती थी... ऐसे कई किस्सों की जानकारी है... कुछ वर्षों में तकलीफ दूर हुई और फिर बारी आई घुटनों की! जरा पैर कुछ उलटा-पुलटा कहीं रखा गया तो फिर घुटनों में तकलीफ शुरु। कभी मोच आ जाय या कभी नस चढ़ जाय... कभी घुटने का

आवरण कुछ सरक जाय या कभी वह टूट भी जाय। ऐसी स्थिति में कई दिन गुजरे हैं, लेकिन दवाई लेने के बारे में कभी विचार भी नहीं आया। जप की जड़ी-बूटी ही जख्म की जड़ को समाप्त कर देती।

इसके पश्चात् कमर की तकलीफ प्रारंभ हुई... दस मिनट एक ही स्थान पर बैठे रहे कि दर्द शुरु हो गया। पैंतालीस छ्यालीस वर्ष की उम्र में भी कमर झुका कर चलना पड़ता, सीधा चल ही नहीं पाते थे। लम्बे समय तक लकड़ी के सहारे ही चलना पड़ा।

वह दर्द समाप्त हुआ और किडनी की तकलीफ प्रारंभ हो गई... बार-बार पेशाब के लिए जाने की तकलीफ... वह पीड़ा समाप्त हुई और पेट की परेशानी शुरु हो गई। जो खाए, वह पचे नहीं, जठराग्नि मंद हो जाए तो लीवर ठीक से काम नहीं करे और जब आंतें काम नहीं करें तो फिर एसिडिटी की समस्या से जुझना पड़ा।

इसके पश्चात् सीना हुआ बीमारी का शिकार और साथ ही हृदय की नाराजगी भी सामने आने लगी। हृदय की बीमारी तो वास्तव में चौंकाने वाली थी। आठ बार हार्ट-अटेक आए।

पहला हार्ट-अटेक तो तब आया जब पूज्यश्री अहमदाबाद के नवा वाडज की वीरनगर सोसायटी में रहने वाले श्री अशोकभाई के बंगले में बिराजमान थे।

तब अहमदाबाद का संघ चिंतित हो गया... उस मर्मान्तक आघात के समाचार से न केवल अशोकभाई का घर बल्कि पूरी सोसायटी भक्तों से भर गई। भक्तों ने अहमदाबाद के हृदय-विशेषज्ञ डॉक्टरों को एकत्रित कर लिया। प्रत्येक डॉक्टर की सलाह यही थी कि इन महाराज को इस प्रकार नहीं रखें बल्कि इन्हें तुरंत ही किसी अस्पताल में भर्ती करवाएँ और ऑक्सीजन की सहायता लें।

लेकिन उस स्थिति में जी पूज्यश्री की अस्पताल जाने के लिए पूर्ण असहमति!

परंतु जब आचारनिष्ठ सुश्रावक डॉ. सुरेश झवेरी ने पूज्य गुरुदेवश्री की जाँच की... तब उन्होंने कहा कि मामला बहुत गंभीर है हृदय में दरार बन गई है

आदि, उचित उपचार इस समय नहीं किए जाते हैं और उसके लिए उन्हें अस्पताल नहीं ले जाया जाता है तो संघ का यह अनमोल रत्न कभी भी छिन जायगा।

संघ को यदि इस रत्न की जरूरत हो तो संघ को अपना फर्ज निभाना चाहिए... अभयसागरजी के शरीर की मिल्कियत उनकी स्वयं की नहीं बल्कि संघ की है और इसलिए अभयसागरजी की इच्छा की तुलना में संघ की इच्छा ही बलवती है इसलिए जरा भी देरी नहीं करें।

कुछ ही देर के पश्चात् एम्बुलेन्स आ गई। स्ट्रेचर द्वारा पूज्यश्री को उठाने की तैयारियाँ की जाने लगी।

लेकिन जब कमरे के अन्दर पूज्य गुरुदेवश्री को जानकारी मिली कि उन्हें अस्पताल में भर्ती करने का पूरा बंदोबस्त कर लिया गया है... तब वे कुछ घबराए। उन्होंने तुरंत डॉ. सुरेश झवेरी को अपने पास अलग से बुलाया और अस्पताल न ले जाने के लिए सूचित किया। लेकिन डॉक्टर मानने को तैयार नहीं थे। तब उन्होंने कहा... मुझे आधे घंटे की मोहलत दो... उसके बाद आप जो कहेंगे, वह मैं करूँगा... पूज्यश्री को आघा घंटे की छूट मिल गई।

सबको कमरे के बाहर भेज दिया। पूज्य गुरुदेवश्री बंढ़ गए और बीस मिनट की अवधिपूरी हुई और तब पूज्यश्री को स्थंडिल (स्थानों) के लिए जाना हुआ। शिष्यों ने उसके लिए व्यवस्था कर दी... वे स्वयं निवृत्त हुए और फिर उन्होंने झवेरी को अपने पास बुलाया और कहा–'फिर मेरी एक बार और जांच करो, इसके पश्चात् निर्णय करते हैं।'

नाक सिकोड़कर अनमने ढ़ंग से डॉ. झवेरी ने उनकी कार्डियोग्राम द्वारा जाँच की... हृदय की परिस्थिति बताने वाला चार्ट बाहर निकला और डॉक्टर की आँखें आश्चर्य से चमकने लगीं... कुछ समय पहले ली गई रिपोर्ट के साथ उसकी तुलना की... और आश्चर्य... बाद की रिपोर्ट में सब कुछ सामान्य था। पहली रिपोर्ट घबराने वाली थीं, जबकि बाद की पूर्णतः नोर्मल!

उपस्थित जन-समुदाय यह नज़ारा देख कर आश्चर्यमुग्धहो गया...

कहने की आवश्यकता नहीं कि... वह एम्बुलेन्स और वह स्ट्रेचर गई।

फिर बिना कोई दवाई लिए वे कुछ दिनों में ही स्वस्थ हो गए। इतना ही नहीं, बल्कि विहार कर पालीताणा पहुँचे... यहाँ तक कि गिरिराज पर चढ़ कर दादा की यात्रा भी की...

हमारी बुद्धि इसे चमत्कार से अधिक का बयान भी नहीं कर सकती है।

इसके बाद उन्हें छाणी, ऊँझा, वल्लभीपुर, पालीताणा आदि स्थानों पर हार्ट-अटेक आए लेकिन हर बार 'वही अदा'। हृदय की परेशानी के पश्चात् गले की तकलीफ होने लगी,

बार-बार खाँसी हिचकी आए... कुछ समय बाद उस समस्या से भी निज़ात मिल गई।

फिर कान ने दिक्कत देनी शुरु की... थोड़ा अधिक बोलने आदि की कोशिश करें कि कान में से रस निकलने लगता फिर वह तकलीफ भी समाप्त हो गई!

इसके पश्चात् उन्हें ऊँझा में लकवा हो गया... और तब आयुष्य की डोरी छोटी हो गई और साधना अधूरी रह गई।

यहाँ कुछ चूक गए। क्योंकि पूज्यश्री ने सारी बात बता दी थी कि जब भी उनकी तबियत बिगड़े तब उन्हें दवाई नहीं दें। और अधिक से अधिक नवकार जाप करें। वही उनकी औषधिहै शेष अन्य दवाएँ साधना में खलेल पहुंचाती है। 'यह तुम सब देखते ही हो कि मैं वैसे ही अच्छा हो जाता हूँ।'

यह बात भी बिलकुल सही है। हमारा भी यह अवलोकन रहा है कि अत्यंत भयंकर गंभीर स्थितियों में भी पूज्यश्री बगैर किसी दवाई के पूर्ण स्वस्थ हुए हैं।

उनका कहना रहा है-'वास्तव में मैं बीमार नहीं पड़ता हूँ, लेकिन वह भी साधना की एक प्रक्रिया है कि

मैं अब कान तक पहुँच गया हूँ, इसके पश्चात् अब मस्तक की स्वस्थता प्रभावित होगी, क्योंकि वहाँ सहस्त्रार चक्र है। उसके स्वस्थ होने पर मुझमें अद्‌भुत शक्ति का संचार होगा, जिससे मैं अपने परोपकारी जिनशासन की अद्‌भुत सेवा कर सकूँगा।'

लेकिन इस दौरान ही संयोगों में वशीभूत दवाएँ देते चले गए और इसलिए पूज्यश्री को खोने की दुर्भाग्यपूर्ण घड़ी आ गई।

परंतु साधना तो पूज्यश्री जहाँ भी होंगे, वहाँ चालू ही होगी, यह हम पूर्ण विश्वास के साथ कह सकते हैं, लेकिन उस साधना की पूर्ति यदि यहीं हो जाती तो पूज्यश्री के विरल व्यक्तित्व को निहारने और उस व्यक्तित्व को वंदन करने की घड़ी हमारे चक्षुओं को भी मिल पाती... लेकिन हम इतने नसीबवान कहाँ थे?

दो

संवत् २०२४ भाद्रपद माह की यह घटना है। चाणस्मा से वडावली गाँव बहुत नज़दीक है और तब वहाँ किसी महोत्सव का आयोजन था। उस अवसर पर हम तीनों भाई पूज्यश्री के साथ वडावली जाने के लिए सायंकाल निकले। दो-तीन किलोमीटर ही चले होंगे और पूंज्यश्री को सख्त गर्मी लगने लगी...। रास्ते पर ही एक छोटे मचान जैसा ढ़ाँचा था, वहाँ अंतिम पानी चुकाने के लिए पहुँचे... और पूज्यश्री जहाँ बैठे कि तुरंत ही वहीं निढ़ाल हो गए... न तो मुंह खोला और न ही होश आया।

तब हम वास्तव में घबराने लगे। किसी तरह से चाणस्मा समाचार पहुँचाए। समाचार मिलते ही पूरा चाणस्मा मानो एक पागल की तरह पूज्यश्री के सामने हाजिर हो गया... पूज्यश्री को पलंग पर लिटा कर चाणस्मा ले आए। पूज्यश्री होश में तो आ गए, लेकिन मुँह तो पूरी तरह बंद ही हो गया था। दाँत मानो ऊपर-नीचे चिपक गए थे। लेकिन फिर भी उन्होंने दवाई नहीं ली और तीसरे दिन पुनः पूर्ववत् स्वस्थ हो गए।

तीन

संवत् २०२६ में मालवा के नाथ दादा नागेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिष्ठा कार्यक्रम पूरा होने के पश्चात् पूज्यश्री एकदम कमजोर हो गए, रक्तचाप सीमा से बढ़ गया, न बोलने और न चलने की शक्ति और लगभग एक सप्ताह यही स्थिति रही... प्रतापगढ़ में चातुर्मास करने का समय आ गया था। स्वयं के गुरुश्री प्रतापगढ़ बिराजमान थे। वहाँ पहुंचना जरूरी था। अंत में डोली द्वारा पहुँचे ... लगभग पन्द्रह दिनों में पूज्यश्री स्वस्थ हो गए। इस समय वह बीमारी क्यों हुई ? उसका निदान हमें मिल ही नहीं रहा था... क्या प्रतिष्ठा के विधिविधान में कुछ गड़बड़ हो गई ? क्या कोई तिरस्कार, अवहेलना की घटना घटी ? या किसी दुष्ट देवी-देवता का प्रकोप हुआ ? इस प्रकार के कई विचार हमें आते रहे... एक बार पूछने पर पूज्यश्री ने बताया कि नागेश्वर दादा की प्रतिष्ठा के समय उन्हें शांतिपाठ करना पड़ा क्योंकि कई प्रकार के परोक्ष विघ्न वहाँ थे। उन्हें दूर करने और दादा के प्रभाव को जागृत करने के लिए शांतिपाठ करना आवश्यक हो गया था और तब यह सहज होता है कि शांतिपाठ करने वाले व्यक्ति के शरीर में कमजोरी आ जाय और मुझ में आई कमजोरी उस शांतिपाठ के होने की सूचना है तथा जो विधिसंपन्न की गई है, उसकी सफलता की भी सूचना है... और अब देखना कि यह तीर्थ एक जीवंत ज्योति की तरह बहुत प्रसिद्ध हो जायगा...।

यहाँ यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि पूज्य गुरुदेवश्री की वह आगाही आज हमारी आँखों के सामने ही सार्थक बनती नज़र आ रही है।

चार

इस घटना की जानकारी अधिकांश व्यक्तियों को है।

जंबूद्वीप की अंजनशलाका व प्राणप्रतिष्ठा अर्थात् माह माघ कृष्ण पक्ष दशमी के तीन दिन पूर्व पूज्यश्री के पैर पर अचानक एक लकड़ी की पेटी गिरी। पूज्यश्री को उससे सख्त दर्द हुआ और पैर पर बहुत सूजन आ गई...।

हजारों की विशाल मेदनी वहाँ जमा थी। उस अवसर पर इस समारोह के मुख्य सूत्रधार के तुल्य पूज्यश्री पर ऐसी कोई विपत्ति आ गाए, उसे भला कौन सहन कर सकेगा।

पूज्यश्री के राजकोटवासी परमभक्त डॉ. मनुभाई, अमरिका के हड्डी विशेषज्ञ इन्दौर के डॉ. प्रकाशभाई, डॉ. वसंतभाई आदि ने पूज्यश्री को बताया कि–'आपके पैर के संबंध में हमें कुछ शंकाएँ हैं, इसलिए इसके कुछ फोटो निकाल लेते हैं, जिससे शंकाओं का समाधान हो जाय।'

पूज्यश्री की अनिच्छा होने पर भी आग्रहवश उन्हें स्ट्रेचर पर लिटा कर डॉ. बकराणी के यहाँ सायंकाल लाए। पाँच फोटोग्राफ लिए गए और कुछ ही देर में रिपोर्ट आ गई और उससे सब चिंतित हो गए। दो फ्रेक्चर थे। उसमें एक तो कमर और जोड़ की मुख्य धुरी मुंडली पर है और डॉक्टर ने कहा कि अड़तालीस घंटों में तो ओपरेशन अवश्य करा लें, नहीं तो पैर पूरी ज़िंदगी लंगड़ाता ही रहेगा और फिर वह निष्क्रिय भी हो सकता है तब छः माह पट्टा बांधकर आराम करना व पैर को एक ही स्थिति में दो माह तक रखना होगा...।

अरे ! यह क्या... कल तो सात दीक्षाएँ, उसके बाद अंजनशलाका और उसके बाद प्राण–प्रतिष्ठा इस प्रकार महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम तो अभी पूरे होने शेष है और इस बीच यह क्या हो गया ? उपस्थित पूज्य गच्छाधिपतिश्री व आचार्यदेवश्री की आँखों से आँसू बहने लगे।

प्लास्टर चढ़ाने और पट्टे बांधने की तैयारी हुई... पूज्यश्री ने डॉक्टरों को रोका... उन्हें कहा कि इस सब की की जरूरत उन्हें नहीं है... लेकिन भीड़ का सख्त आग्रह जारी रहा, तब पूज्य गुरुदेवश्री ने कहा– 'रात में यह सब रहने दो, कल सवेरे देखेंगे...'

रात बीती और सवेरे मैं चरणस्पर्श करने के लिए गया तो उन्होंने मुझे अपना पैर बताया और कहने लगे– 'हेमू, लो इसे दबाओ।' मैंने कहा– 'कल तो आप छूने भी नहीं दे रहे थे–छूने मात्र से आप चीख रहे थे और आज कह रहे हैं कि दबाओ'

'तुम दबाओ न ?'

तब मैंने जोर से पैर दबाया, लेकिन कोई प्रभाव नहीं। मुझे आश्चर्य हुआ और मैंने सबको यह समाचार पहुँचाया। सभी डॉक्टर आ गए। सबको आश्चर्य हुआ... फिर भी अमरिका वाले डॉ. प्रकाशचन्द्रजी बागानी ने पूज्यश्री को कहा...

'बापजी, जब तक इसकी सही रिपोर्ट नहीं मिलती है तब तक हम विश्वास नहीं करेंगे। हो सकता है कि पट्टा-प्लास्टर न बंधवाने के कारण आपने मन मजबूत बना लिया हो और दर्द होने के बावजूद भी आप नकली शांति प्रदर्शित कर रहे हों।'

'नहीं, ऐसी बात नहीं डॉक्टर!' पूज्यश्री ने हंस कर जवाब दिया।

'नहीं बापजी... हम तो रिपार्ट पर विश्वास करेंगे इसलिए एक बार आपका एक्स-रे ले लेते हैं।'

'नहीं, अब मुझे स्ट्रेचर का उपयोग नहीं करना है। निरर्थक दोष-सेवन मैं क्यों करूँ ?

'बापजी, आपको कहीं भी जाना नहीं होगा। हम यहीं पर एक्स-रे ले लेंगे।' आग्रहवश तब पूज्यश्री के पैर के पाँच फोटो लिए गए।

कुछ घंटों के पश्चात् फोटो आ गए... फिर कल के सायंकाल के फोटो के साथ आज के फोटो से तुलना की गई... तब प्रकाशभाई बोले-

'गजब है बारह घंटे पूर्व के फोटो में साफ फ्रेक्चर नज़र आ रहे है और इसमें इशारा तक नहीं!' 'सब महामंत्र की कृपा है।'

माहौल जो गमगीन था, वह आनन्द की लहरों से तिरोहित हो गया..... दीक्षा व प्राण-प्रतिष्ठा अदि सभी कार्यक्रम गरिमापूर्ण ढंग से सम्पन्न हो गए और पूज्यश्री भी पैर की अस्वस्थता से धीर-धीरे बाहर आ गए...। एक सप्ताह के बाद अर्थात् फाल्गुन शुक्लपक्ष सप्तमी को मैंने पूज्यश्री से अनुरोध किया कि- साहबजी! कल फाल्गुन शुक्लपक्ष अष्टमी के परम पवित्र दिन मेरी सांठवीं ओली का उपवास है। आपश्री

के साथ गिरिराज की यात्रा करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ, इसलिए कल आप भी पधारें.... ! पूज्यश्री ने सहमति दर्शाई । हम अठारह ठाणे पूज्यश्री के साथ चढ़ने के लिए तैयार हुए और फाल्गुन शुक्लपक्ष अष्टमी को ढाई घंटे में उपर चढ़ गए। ..... पूज्यश्री के आदेश से दादा के सामने मैंने महाराजा कुमारपाल रचित द्वात्रिंशिका का पठन किया।

यात्रा अपूर्व आनन्द के साथ पूर्ण हुई । तीव्र वेदना से मुक्त होकर मात्र आठ दिनों में इस प्रकार की यात्रा करना? उसे हम क्या कहेंगे? कुदरती-करिश्मे के अलावा?

पांच

वह था तो पूरा नास्तिक इंसान.....

मूल भारतीय, लेकिन रहनेवाला अमरिका का..... वहाँ विलास चरम पर और अप्रतिम वैभव का साम्राज्य......

लेकिन......

एक दिन ऐसा आया कि वे भाई साहब साठ लाख डालर के कर्जदार बन गए।

इस आघात में एक मोड़ आया .... मानसिक संतुलन कहाँ से प्राप्त किया जाय? किसी की सलाह से अच्छी पुस्तकें पढ़ना शुरु किया। उनका पुस्तकालयों की सीढ़ियां चढ़ना प्रारम्भ हो गया ओर धीरे-धीरे वे किताबी कीड़े बन गए.... आठ-आठ घंटे लगातार पढ़ते ही रहते.... सतत....अविरत ......

तब वे पूणे में रहते थे.... पुस्तकालय में बैठे हुए थे और कोई मंत्र-तंत्र की पुस्तक अत्यन्त रसपूर्वक पढ़ रहे थे....

तब ही वहाँ कोई सुर्ख काली-दाढ़ी वाले तेजस्वी संत आए और उन भाई को कहने लगे :

"यह क्या फिजुल की बातें पढ़ रहे हो? जाओ कश्मीर की ओर, हिमालय के घने जंगल में, वहाँ पर महात्मा बैठे है।

वहाँ जाओ.... कोई नई उपलब्धि मिलेगी.....

"उनका पता तो दीजिए"

"यह लीजिए"

"मैं जाऊँ वहाँ.....?"

"हाँ, लेकिन याद रखना"

"क्या?"

" वे योगी-महात्मा शुरु में तुम्हारा तिरस्कार कर ठुकरा देंगे। किन्तु तुम उन्हें छोड़ना मत। "

बस, इतना कहकर युवा-संत तुरन्त रफू-चक्कर हो गए।

बस इन भाई को तो यह महसूस हुआ कि इसमें तथ्य अवश्य है।

किसी तरह से वे भाई उस दिशा में आगे बढ़ गए। विकट रास्ते, भयावह जंगल का वातावरण, फिर भी वे भाई हिम्मतपूर्वक आगे बढ़ते गए और उस स्थान पर पहुँच गए, जहाँ का पता दिया गया था।

वहाँ जा कर देखा तो विशाल काया कम से कम पन्द्रह फुट की और चेहरा अति विकराल.... ! वह भाई जैसे ही वहाँ पहुँचे कि वे योगी गुस्से में चीखने लगे :

"अरे ! मच्छर.... ! यहाँ क्यों आया ?

"आपके दर्शन के लिए "

"अरे ! तुम यहाँ से लौट जाओ, वापस जाओ! "

लेकिन, गुरुदेव मैं वापस जाने के लिए नहीं आया।" जैसै ही यह जवाब दिया कि वे योगी तुरन्त क्रोधित होकर बोलने लगे :

"नहीं जाएगा तू , ले यह !" यह कहते हुए उन्होंने एक लात जोर से कमर पर ऐसी मारी कि वे भाई ५-६ फुट दूर औंधे मुंह गिरे .... लेकिन फिर भी वे उन युवा-संत के कथन पर विश्वास करते हुए उठे और पुनः योगी के पास पहुँचे...

"वापस आया तू ?"

"इसीलिए तो कष्ट उठा रहा हूँ, भगवंत !" हाथ-जोड़कर उन भाई ने कहा।

उसके पश्चात् तो उन भाई का योगी के साथ लम्बी अवधि तक संपर्क रहा। कई दिन वे वहाँ रहे। उस दौरान उन योगी ने नवकार महामंत्र के जाप-आम्नाय आदि दिए और एक दिन रवाना करते हुए कहा : "अब जाओ बेटे.....तुम्हें

नवकार मिला है। यह बहुत अद्‌भुत है !"

"नमस्कार गुरुदेव ! मैं जाता हूँ, किन्तु कृपया यह बताएँ कि वहाँ मेरे मार्गदर्शक कौन रहेंगे ?"

"फिक्र न करो ! जब भी कोई उलझन आए, तब हिन्दुस्तान में अभयसागरजी ' नामक एक जैन साधु हैं। उनसे मिलना। मेरा नाम देना। वे तुम्हें मार्गदर्शन देंगे। बस जाओ !"

यह सारा वाकया हमें तब मालूम हुआ, जब ऊँझा में पूज्य गुरुदेव श्री अशोकसागरजी म. की गणि पदवी हुई और उसके पश्चात् वे भाई ऊँझा आए। हम पूज्यश्री के पास बैठे हुए थे और उन भाई ने तब वह पूरा प्रकरण बताया।

बस, इसके पश्चात् वे भाई और पूज्यश्री खड़े हो गए और साधनाखंड में चले गए और वहाँ दोनों के बीच तीन घंटे तक गुफ्तगू होती रही और उन दोनों में क्या चर्चा हुई, वह तो भगवान ही जानें....

परन्तु उस किस्से से मालूम होता है कि पूज्य गुरुदेवश्री का व्यक्तित्व कहाँ-कहाँ और किन-किन क्षेत्रों में फैला हुआ था !

छ :

"बिपिनभाई ! जा कर आ गए...."

"कहाँ ?"

"...मेरे गाँव खेरालु में इस बार तो मजा आ गया...."

"कैसे ?"

"मैं मेरे गाँव गया, तब आपके गुरु अभयसागरजी वहीं थे, इसलिए शांति से डेढ़-दो घंटे

वहाँ बैठे और वहाँ पृथ्वी के बारे में और उस पर रंगों के समीकरण के क्या-क्या प्रभाव होते हैं उस पर विस्तार से चर्चा हुई...."

अन्य दूसरी कई बातें कर दोनों मित्र अलग हुए....फिर बिपिनभाई ने विचार किया कि पूज्य गुरुदेव अभयसागरजी महाराज तो इस समय गिरनार की ओर हैं। तो फिर तारंगा के नजदीक के गाँव में मित्र ए.डी. व्यास के साथ उनकी मुलाकात किस प्रकार हुई? निश्चित ही वे अन्य कोई साधु होंगें।

लेकिन.... पृथ्वी के सम्बन्ध में चर्चा तो और कौन साधु करेगा ? कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है। मामला स्पष्ट करना होगा.....

दसरे दिन साराभाई केमिकल्स के कार्यालय में दोनों मिले तब बिपिनभाई ने कहा....

" भाई रोंग नंबर ! "

"किस प्रकार ? "

" दोस्त ! आपको जो मिले वे अभयसागरजी नहीं बल्कि अन्य कोई दूसरे साधु होंगें। "

" कैसी बातें कर रहे हो, बिपिनभाई ? क्या मैं अभयसागरजी को नहीं पहचानता ? .... मैं कहाँ अन्य किसी दूसरे जैन साधु के संपर्क में हूँ ? तथा अभयसागरजी व आपके तीन भाई जिन्होंने दीक्षा ली उनके अतिरिक्त मैं अन्य किसी भी साधु के परिचय में कहाँ आया हूँ ?

अच्छा, और दूसरी बात यदि कोई अन्य महाराज हो भी तो उनके साथ मेरा क्या सम्बन्ध ? उन्हें मैं केसे पहचानूंगाँ ?

चर्चित विषय पृथ्वी पर वार्तालाप किस प्रकार हो सकता है? मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे अभयसागरजी ही थे..."

वह दिन-दिनांक दिर्ज किया अब जांच की तो पुष्टि हुई कि उस दिन पूज्यश्री गिरनार में ही थे आप वहाँ विशिष्ट प्रकार के जप में रत थे तो फिर ए.डी. व्यास-लोकसत्ता (वडोदरा) प्रेस रिपोर्टर को वे किस प्रकार मिले ?

लेकिन उसके पश्चात् ए. डी. व्यास से मुलाकात नहीं हुई और पूज्यश्री से उस बारे में तीन-चार बार पूछा, लेकिन उन्होंने उस पर कोई ध्यान ही नहीं दिया...

इसलिए अनुमान यही लगाया जा सकता है कि पूज्यश्री अनेक रूपों में प्रस्तुत हो सकते थे। एक रूप में गिरनार में उपस्थिति और दूसरे रूप में तारंगा के पास खेरालु में... अब दो रूप किस प्रकार किए होंगे? वह तो नवकार ही जानें।

सात

उनका स्थायी वास अहमदाबाद।

वे पूज्यश्री के भगत थे। उनका नाम भी भगत था!

जाति से रबारी (ग्वाले), अत्यंत स्थूल शरीर, सदैव भरवाड़ (चरवाहे) के वेश में रहते... लेकिन नवकार के परम चाहक। इतना ही नहीं, नवकार के कई प्रकार के रहस्यों के ज्ञाता भी।

चार-छः माह में पूज्य गुरुदेवश्री के पास वे हर हाल में आते ही थे। पत्र-व्यवहार कभी नहीं, लेकिन मिलने के लिए अवश्य आते थे। हम सिरोही में थे और एक दिन सबेरे पूज्यश्री अत्यन्त उदास थे। हमने पूछा-" क्यों क्या हुआ?

आप उदास क्यों हैं?"

"आज नवकार के जप में संकेत आया कि भगतजी गए.....पूरे स्वस्थ-तंदुरस्त ही चले गए हैं।"

दूसरे दिन पूज्य गुरुदेवश्री के किसी भक्त का तार आया।

" भगतजी एक्स्पायर्ड!"

आठ

नागेश्वर में चैत्र की ओली करवा कर हम पूनमचन्दभाई की दीक्षा के लिए ऊँझा जा रहे थे।

बीजापुर आया और पूज्य गुरुदेवश्री का पत्र मिला। वह दिन था वैशाख शुक्लपक्ष-चतुर्दशी।

पत्र में बताया गया था कि वैशाख कृष्णपक्ष द्वितीया आपके लिए भारी है, ध्यान रखें और जो विधि बताई गई है उसे करें।

वैशाख कृष्णपक्ष-द्वितीया को सवेरे हम वीसनगर आए। शाम को विहार कर वालम की ओर जा रहे थे। विहार करते समय वालम से दो-तीन किलोमीटर दूर सड़क पर होंगे कि सामने से एक ट्रैक्टर आया और हम सड़क पर आ गए।

लेकिन ट्रैक्टर की आवाज में यह मालूम ही नहीं हो पाया कि पीछे कोई जीप भी आ रही है और जैसे ही सड़क पर चढ़े कि पूज्य गुरुदेव श्री अशोकसागजी म. जीप से टकरा गए और वहाँ से पाँच फुट दूर गिरे। लेकिन नसीब अच्छे थे कि वे जहाँ गिरे वहाँ रेती का ढेर था और विशेष कोई चोट नहीं आई....बाल-बाल बच गए।

सूली की सजा सुई से टल गई। पूज्यश्री द्वारा दिए जप के बल से ही यह सब मुमकिन हो सका।

संवत् २०२३ का चातुर्मास करने के लिए हम इन्दौर पहुँचे। वहाँ जाने पर पता चला कि रत्नप्रभविजयजी नामक एक मुनिवर वहाँ अस्पताल में उपचार के लिए आए हुए हैं। मस्तक की शायद कोई गहरी बड़ी पीड़ा थी इसलिए उन्होंने आपरेशन कराया था।

जैसे ही समाचार मिले वैसे ही दादा गुरुदेव पूज्य उपाध्याय श्री धर्मसागरजी म. स्वयं अस्पताल पधारे।

वात्सल्यपूर्वक मुनिवर की कुशलता पूछी और यह भी कहा कि यदि आवश्यक न हो तो बिना वजह अस्पताल में क्या रह रहे हैं ? उपाश्रय पधारें। आपके लिए समस्त व्यवस्थाएँ हो जाएंगी.... मेरे साधु आपकी हर प्रकार से देखभाल करेंगे....आप फिक्र न करें!

इसके तीन-चार दिन बाद डॉक्टरों की अनुमति

लेकर वे मुनिवर हमारे उपाश्रय में पधारे। उनकी सब प्रकार की व्यवस्था हो गई। दवाईयाँ व डॉक्टर के उपचार तो चालू थे ही....फिर भी उन्हें अपेक्षित राहत नहीं थी....

मस्तक की पीड़ा बार-ब्रार उभर आती थी.... सिर नीचे झुके नहीं, इसलिए गले में प्लास्टर पट्टा लगाया गया था....

यद्यपि उससे तकलीफ बहुत अधिक थी, लेकिन उपचार के लिए वह बहुत आवश्यक था!

दवाईयाँ नियम से दी जा रही थी। डॉक्टर जांच के लिए समय समय पर आ रहे थे। परहेज पर पूरा ध्यान दिया जा रहा था, फिर भी स्वास्थ्य मे किसी भी प्रकार का सुधार महसूस नहीं हो रहा था.. बल्कि स्थिति और बिगड़ती ही जा रही थी।

एक दिन दोपहर में उन्हें असह्य वेदना शुरु हो गई... हम सब इकठ्ठे हो गए.. डॉक्टर भी आ गए : लेकिन पीड़ा बढती जा रही थी, यह देख डॉक्टर भी हताश हो गए और इशारों में यह समझा कर कि 'खेल-खतम हो गया' कहकर डॉक्टर रवाना हो गए। कुछ ही देर में मुनिश्री अचेत हो गए।

उस समय पूज्य गुरुदेवश्री वहाँ उपस्थित थे, लेकिन वेदना के कारण हो रही व्यथा को वे भी देख नहीं सके। वे अपने कमरे में चले गए। संघ के अग्रणी एकत्रित हो गए, हमने नवकार की धून गुंजा दी। मुनिश्री की श्वास मंद हो गई।

दूसरी ओर संघ ने भी उत्तर क्रिया की व्यवस्था कर दी....

बस... क्षणों की गिनती जारी थी... इतने में पूज्य गुरुदेवश्री कमरे में से बाहर निकले, उनके हाथ में एक पात्र था, उसमें पानी लेकर वे सबके बीच आ गए और कुछ जप किए और मुनिश्री के शरीर पर पानी छींटा... एक बार, दो बार और तीन बार... मंद पड़ चुकी मुनिश्री कि श्वास कुछ तेज हो गई। कुछ देर बाद आँखें खोल कर उन्होंने अपनी चेतना का

आभास दिलाया, इसलिए पूज्य गुरुदेवश्री ने बचा पानी उनके मुँह में डालकर पिला दिया... उसके पश्चात् तो बिल्कुल देरी नहीं... एक घंटे में तो मुनिवर बोलने भी लगे... पूज्य गुरुदेवश्री ने कहा... दूर करो यह प्लास्टर और डॉक्टर की दवाओं को बंध कर दो, नवकार माता ही रत्नप्रभविजयजी को स्वस्थ कर देंगी और वैसा ही हुआ....

डॉक्टरों की कई दवाईयाँ कुछ भी असर न दिखा सकी और दूसरी ओर पूज्य गुरुदेवश्री ने कुछ ही दिनों में उन्हें स्वस्थ कर दिया।

फिर तो पूरे चातुर्मास में साथ ही रहे और चातुर्मास के पश्चात् अपने समुदाय से मिलने की व्यवस्था भी उन्होंने कर दी....और कई वर्षों तक उन्होंने चारित्र पालन किया....

हमने पूज्यश्री के अत्यन्त जीवंत करुणाभाव को देखा है और उनकी करुणा-सरिता में जिसने भी डूबकी लगाई है, वह तो मानो निहाल ही हो गया है....

[redacted]

डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी....

जनसंघ के विद्वान व्यक्तियों के बीच एक प्रखर पंडित ! पूज्य गुरुदेवश्री के संपर्क में वे बहुत रहे। लगभग तीस तक वे पूज्यश्री के साथ संपर्क में रहे। वर्ष में एक-दो बार पूज्यश्री के पास आते थे।

ऐसे ही किसी कारणवश वे पूज्य गुरुदेवश्री के पास सूरत आए और तब उन्हें हृदय की तकलीफ हुई....तत्काल डॉक्टर आए और उन्होंने निदान दिया कि यह तो हार्ट-अटेक है ..... तुरन्त इलाज कराना होगा।

दो-तीन दिन तक तो उपचार ठीक चला, लेकिन पंडितश्री की अपेक्षाओं के अनुरूप वह नहीं था । व्यवस्था-इलाज सब कुछ ठीक और व्यावसायिक ढंग से हो रहा था... लेकिन फिर भी उन्हें परिवार की याद आती ही रहती थी।

"किसी भी तरह मुझे मेरे क्षेत्र, मेरे वतन छोड़

दीजिए.... वहाँ मुझे सुहायगा" लेकिन डॉक्टरों ने कहा " - अभी तो आप कहीं भी नहीं जा सकते है। आपको पूरी तरह आराम ही करना होगा..."

लेकिन पंडितजी का मन नहीं मान रहा था। बार-बार वे एक ही बात कहते थे-" मुझे जल्दी मेरे घर पहुँचा दो।"

पुज्य गुरुदेवश्री के सामने भी वे बार-बार यही माँग करते थे.... अतः पूज्य गुरुदेवश्री भी द्रवित हो गए... फिर एक बार कहा :-

"पंडितजी, आप फिक्र न करें ! आपको कब पधारना है मंदसौर।"

" जल्दी ही"

"कोई बात नहीं ..... । लीजिए ये दोनों यंत्र और मेरे कहे अनुसार आपको प्रथम यंत्र का उपयोग कर यहाँ से रवाना होना हागा..... आप निश्चित ही मंदसौर पहुँच सकेंगे। यदि रास्ते में कोई तकलीफ हो तो दूसरे यंत्र का इस्तेमाल करना। तकलीफ दूर हो जाएगी।"

श्रावक कहे : "साहब ! यह हृदय का मामला है और मंदसौर कोई नजदीक है ? यहाँ से सातसौ किलोमीटर दूर गाड़ी, बस आदि बदलना पडेंगे, तब कहीं वहाँ पहुँच पाएंगे..... ऐसी स्थिति में तो हम नहीं भेज सकते...."

पूज्य गुरुदेवश्री ने कहा -

"पंडितजी यहाँ रहें, तो अच्छा ही है, लेकिन यदि उनको जाना ही हो तो उसकी व्यवस्था मैंने कर दी है। उन्हें कुछ भी नहीं होगा।"

और पंडितजी वहाँ से रवाना हुए.... एक ही यंत्र के प्रभाव से इतना लम्बा सफर तय कर वे आराम से अपने नगर मन्दसौर पहुँच गए.... किसी प्रकार की कोई तकलीफ नहीं हुई..... बल्कि जो थी वह भी गायब हो गई।

ग्यारह

पूज्य गुरुदेवश्री के पास यदि कोई भी दरिद्र, पीड़ित या व्यथित व्यक्ति आता और वह सहायता के लिए प्रार्थना करता तो पूज्य गुरुदेवश्री का करुणाभाव तब छलके बिना नहीं रहता था....

फिर वह व्यक्ति चाहे अमीर हो या गरीब,वह उदार हो या फिर कंजूस, वह शारीरिक रोग से पीड़ित हो या फिर वह मानसिक बीमारी से संतप्त हो, पूज्य गुरुदेवश्री उसका दर्द देख नहीं सकते थे। मेत्राणा तीर्थ के पास एक मेता नामक गाँव है और वहाँ रहनेवाले एक श्रद्धा-संपन्न श्रावक का पुत्र बीमार हो गया।

पूर्ण यौवन की उसकी अवस्था। विवाह किए एक ही वर्ष हुआ था और उसे मस्तिष्क का भयंकर रोग हो गया.....

उपचार प्रारंभ हो गया.... लेकिन राहत नहीं मिली।

डॉक्टर को भी बताया.... लेकिन सुकून फिर भी नहीं मिला। उनका दर्द न सहा जा सकता था और बीमारी ऐसी थी कि निदान भी नहीं मिल रहा था...

पालनपुर और अहमदाबाद के डॉक्टरों को बताया....। डॉक्टर्स ने कहा : यह हमारे हाथ की बात नहीं है... मस्तिष्क का यह दर्द असाधारण है.... मामले को गंभीर कह सकते हैं। मुम्बई ले जाएँ... आपरेशन के अलावा दूसरा कोई विकल्प नहीं है।"

सेठ ने जब आपरेशन के बारे में सुना तो वे घबराए... बीमारी घातक है, आपरेशन गंभीर है और उसका खर्च भी बेशुमार है....

लेकिन फिर करना क्या ? पुत्र को तो बचाना ही है। तय किया कि घर के गहने व आभूषणों को बेच कर आपरेशन कराएँगे... और वहाँ जाने के लिए एक विशेष दिन तय किया।

उस समय पूज्य गुरुदेवश्री पालनपुर में बिराजमान थे। इन सुश्रावक के जेहन में ख्याल आया कि जब वहाँ जाना ही है तो गुरु महाराज से वासक्षेप भी करा लेते हैं, जिससें चिंता समाप्त हो।

पुत्र को ले कर सेठ पूज्य गुरुदेवश्री के पास आए। सेठ के चेहरे पर पूर्ण उदासी थी इसलिए पूज्य गुरुदेवश्री ने पूछा "भाग्यशाली, इस तरह से मायूस क्यों हो ?"

सेठ ने प्रत्युत्तर में कहा-"गरुदेव, क्या करूँ ? जवान लड़का है। पिछले साल ही इसका विवाह संपन्न किया है और यह बीमारी लग गई है। मुम्बई तक भी बता दिया है और सभी डॉक्टरों का कहना है कि आपरेशन कराएँ। "साहब ! मेरा सामर्थ्य नहीं है, लेकिन लड़का चला जाय, वह भी कैसे सहन हो.... घर के गहने व आभूषणों को बेच कर आपरेशन कराऊँगा। आप तो इस पर ऐसा वासक्षेप डालें कि यह लड़का बच जाय....

सेठ की उदासीनताभरी वाणी व चेहरा देख कर पूज्य गुरुदेव की करुणा छलकने लगी और तब पूज्य गुरुदेवश्री ने कहा :-

"महानुभाव ! फिलहाल मुम्बई मत जाओ। आज १२:३९ बजे अपने पुत्र को लाना, मैं वासक्षेप कर दूँगा।"

फिर १२:३९ बजे पूज्य गुरुदेवश्री ने पुत्र पर वासक्षेप किया और फिर शाम होते-होते तो जो राहत विदा हो चुकी थी, वह वापस आने लगी.... सेठ की आशा जगी। इसी प्रकार दूसरे दिन व तीसरे दिन भी वासक्षेप कराया और पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा बताई नवकार विधि को संपन्न किया....

पुत्र पूर्णतः स्वस्थ हो गया.....

तब से आज तक

न बीमारी की चीख....

न आपरेशन की आह

न खर्च से तंगी।

बारह

वे वजुभाई हांगकांग रहते थे।

अचानक उन्हें लकवा हो गया। अस्पताल में

भर्ती किया....आधा अंग पूरी तरह चेतनाहीन.... बेकार हो गया....

संपत्ति व समृद्धि का कोई पार नहीं, लेकिन साथ ही वेदना भी असीम....

हांगकांग का एक प्रसिद्ध अस्पताल, लेकिन वहाँ वजुभाई को बिलकुल भी चैन नहीं... डॉक्टर्स हाजिर हैं। दवाईयों के डोज छोटी मेज पर रखे हुए हैं.... सब कुछ हैं, लेकिन फिर भी उन्हें घबराहट हैं, असमंजसता है, ऐसी परवशता को कौन पसन्द करेगा....?

लेकिन कुछ समय पहले ही उन्होंने अपने वतन पाटण में पूज्य गुरुदेव की आगम वाचना कराई थी.... वह आगम-वाचना करीब डेढ़ माह चली। करीबन ३०० साधु-साध्वी उस वाचना में एकत्रित हुए और हजारों भाविकों ने जिनवाणी के अनमोल रस का पान किया.... वजुभाई ने इसके लिए खर्च हो रहे रुपयों की ओर नहीं देखा।

जिनवाणी के चरणों में बहुत संपत्ति न्यौछावर की और उत्तम सुकृत उपलब्ध किया और जितना सम्मान जिनवाणी का कर सकते थे, उतना किया।

मानों उसी सुकृत के प्रतिफल का हांगकांग के उस अस्पताल में साक्षात् मिलना हो गया।

रात्रि का समय था....

सब सोए हुए थे....

तब वजुभाई ने आँख की बंद पलकों के पीछे एक दृश्य देखा....

पूज्य गुरुदेवश्री अभयसागरजी म. यकायक ही वहाँ आ पहुँचे.... और आकर कहने लगे....

“वजुभाई, इस प्रकार क्यों सो रहे हो?”

“गुरुदेव ! फँस गया हूँ.... देखो न मेरी यह हालत... लकवे का शिकार हो गया हूँ...”

“घबराओ मत! बैठ जाओ....”

“लेकिन किस प्रकार गुरुदेव ?”

"चिंता मत करो.... ! बैठने का प्रयत्न तो करो....."

और.... आश्चर्य ! बीना किसी सहारे के वजुभाई बैठ गए।

"हाथ जोड़ो ! सिर झुकाओ"

सिर झुकाया और पूज्य गुरुदेवश्री ने वासक्षेप किया। लम्बी अवधि... और फिर कहा चलो और पूज्य गुरुदेवश्री ने हाथ पकड़ा और वजुभाई चलने लगे...

प्रभात में ही वजुभाई....अस्पताल से वास्तव में चल कर अपने निवासस्थान पहुँचे... मानों कुछ हुआ ही नहीं....

डॉक्टर्स भी हैरत में पड़ गए.... परिजन को यह सब चमत्कारिक लगा....

अरे ! यह क्या ?

वजुभाई कुछ भी नहीं कह रहे थे। बस गुरुदेव की कृपा....

लेकिन कहाँ गुरुदेव और कहाँ तुम ?

कहाँ हांगकांग ? और कहाँ भारत में उत्तर गुजरात का पाटण ?

लेकिन फिर करिश्मा किसे कहा जाएगा ?

इसके पश्चात् अपने पुत्र को विमान से भेज कर पूज्य गुरुदेवश्री का वासक्षेप प्राप्त किया और रही-सही बीमारी से भी मुक्ति मिल गई....

तेरह

उदयपुर के आज के जीवंत श्रावक कहते हैं कि....

पूज्य गुरुदेवश्री ने जब यहाँ चातुर्मास किया था, तब हिमालय से कोई योगी-संन्यासी यहाँ उदयपुर तक पूज्य गुरुदेवश्री को ढूंढते हुए आए.....

योगी की भाषा में दोनों महापुरुषों के बीच लम्बी चर्चा चली.... इसके पश्चात उन योगी ने एक प्रयोग किया। सिगड़ी और एक लोहे का सरिया मंगवाया।

सिगड़ी में सरिये को बहुत गर्म किया और फिर अपने पास रखी झोली में से एक पुड़िया निकाली....उसमें था सफेद पावडर...... उसे उस लाल सुर्ख सरिये पर भूरभूराया। कुछ ही देर में लोहे का वह सरिया सोने का बन गया।

उपस्थित श्रावकों की आँखें फटी की फटी रह गई ?

"ओहो-चुटकीभर पावडर का कमाल.... ? लोहा अब सोना बन गया ? गजब की बात.... फिर भी पूज्य गुरुदेवश्री ने वह पावडर लेने से इंकार कर दिया और सरिया भी अपने पास नहीं रखा....!

'मांगे वह भागे और त्यागे वह आगे' यह इसका ही नाम है न!

चौदह

"भूखे भजन न होय गोपाला, लो अपनी झोली और अपनी माला"

महाराज! नरसिंह मेहता की कही हुई यह पंक्ति बिलकुल सच है। आप कहते है धर्म करो, पुण्य करो, अच्छे काम करो, लेकिन हमारी हालत तो देखो.... पूरा गाँव प्यासा है.... पानी की एक बूंद भी नहीं है.... हमारा यह पाताल कुआ तो पाताल में ही चला गया है.... इसका कुछ करो।"

पूज्य गुरुदेवश्री की यह पद्धति थी कि सायंकाल विहार कर किसी गाँव में जाते... फिर वहीं व्याख्यान का कार्यक्रम रखते थे।

जैनों के घर थे नहीं! दूसरी कोई आबादी जब होती थी, तब जैन साधु को देख कर लोगों की भीड़ उमड़ पडती और साधु क्या करता है ? वह देखा करते.... कहीं ऐसे दुष्ट लोग भी आ जाते....और कुछ उपद्रव मचाते थे...। लेकिन यह गाँव ऐसा नहीं था और लोग अच्छे व सभ्य थे!

अच्छे लोग दिखाई दे रहे थे, इसीलिए, पूज्य गुरुदेवश्री व्याख्यान के लिए कहने लगे। यहाँ जो भीड़ एकत्रित हुई, उन लोगों को पूज्य गुरुदेवश्री ने कहा कि अभी हम हमारा संध्याकार्य कर लेते हैं ...

फिर आप सब आईए, तब कथा सुनाएंगे।

कुछ ही देर में गाँव में लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गई.... पूज्य गुरुदेवश्री ने एक पद गाया और प्रवचन दिया, उसमें उन्होंने कथा भी कही और उपदेश भी दिया। उपदेश पूरा हुआ तब गाँव के अग्रणी आगे आए और उन्होंने उपरोक्त बातें कहीं.....।

"महाराज इस वर्ष तो तड़प रहे हैं। नाम मात्र भी पानी नहीं है..... अभी तो चैत्र का कृष्णपक्ष ही चल रहा है.....

वैशाख और ज्येष्ट कैसे गुजरेंगे ? बहुत कठिन लग रहा है.... !

"महाराज ! आपके जैसे त्यागी व ज्ञानी संत यहाँ पधारे और फिर भी हमारा गाँव प्यासा रहे, क्या यह ठीक लगता है ? महाराज हम तो भरोसा ले कर यहाँ आए हैं। कुछ करें और गाँव को तकलीफ से उबारें....।" गाँव के दो-तीन अग्रणियों ने जब बात की तब.... पूज्य गुरुदेवश्री ने उत्तर में कहा :

"प्रभु-भजन करो, सब कुछ ठीक हो जायेगा...."

"महाराज ! भजन-कीर्तन तो रोज ही कर रहे हैं, लेकिन इतना क्रूर काल आया है कि आज तो भगवान भी नहीं सुन रहे हैं...."

"ऐसा नहीं है भाई, आप अपनी श्रद्धा से करें.... चिंता नहीं करें....."

"महाराज ! आप जैसी बता रहे हैं, वैसी ही सब सेवा भक्ति करते हैं.... लेकिन आप कुछ करें तो ठीक रहेगा।"

"देखेंगे भाई।"

देर रात के बाद सभा विसर्जित हो गई... ?? लोग रात में करवटें बदलते रहे....

लेकिन.... दूसरे दिन सवेरे के पश्चात् तो गाँव का वातावरण ही परिवर्तित हो गया.....प्रत्येक के चेहरे पर खुशी है....

क्योंकि, उस पाताल कुए में आज पानी लबालब भरा है....

कितने ही दिनों से पानी की बूँद भी नसीब नहीं हो रही थी और आज पूरा गाँव पानी खींच रहा है और कुआँ फिर भी भरपूर है... गाँव के लोगों को विश्वास हो गया कि यह इल्म गाँव में पधारे संत-महात्मा का ही है....

हमारी प्रार्थना कामयाब हुई..... चलो उन महाराज के पास पहुँच कर चरण-वंदना करें.... ऐसे महाराज के तो दर्शन भी दुर्लभ.....

लेकिन जाएँ कहाँ....? महाराज की जानकारी किसे है ? बहुत पड़ताल की....लेकिन पता नहीं लगा.....

पन्द्रह

आनन्दघनजी के दर्शन

पूज्य गुरुदेवश्री उस समय पालीताणा में बिराजमान थे। एक बार गुरुदेवश्री को पालीताणा गाँव में पधारने का अवसर आया। उस समय गाँव में सौराष्ट्र केसरी पूज्य आचार्यदेव श्री भुवनरत्नसूरीश्वरजी म. बिराजमान थे। उन्हें जब पूज्यश्री के पधारने की जानकारी मिली, तब आचार्यदेव बहुत प्रसन्न हुए। व्याख्यान के समय दोनों ने एक दूसरे से आग्रह किया और बाद में दोनों ने प्रवचन दिए।

आचार्यदेवश्री बाद में पूज्य गुरुदेवश्री के पास पधारे और लम्बे समय तक उनकी बैठक चली। उस दौरान पूज्य भुवनरत्नसूरीश्वरजी महाराज ने अपने मन में संग्रहित कई प्रश्नों को पूज्यश्री के समक्ष प्रस्तुत किया। पूज्यश्री ने प्रत्येक प्रश्न का सुखद समाधान दिया। इससे आचार्यदेव बहुत प्रसन्न व आश्चर्यचकित हुए। उसके पश्चात् एक दिन व्याख्यान में उन्होंने कहा कि उन्हें तो पंन्यास श्री अभयसागरजी महाराज में **आनन्दघनजी** के दर्शन हाते हैं।

सोलह

१११ वर्षीय भैरवानन्दजी उस समय हम पाटण जा रहे थे।

पूज्य माताजी महाराज सद्गुणाश्रीजी व पूज्य बहिन महाराजश्री सुलसाश्रीजी महाराज की प्रेरणा से पूज्य गुरुदेवश्री की वार्षिक स्मृति के निमित्त ६८ छोड़ के साथ एक अति भव्य महोत्सव का आयोजन किया जा रहा था। नवसारी का चातुर्मास पूरा कर तुरन्त उग्रविहार कर पाटण जा रहे थे। एक दिन शाम को विहार में देरी हो गई। जिस गाँव तक पहुंचना था, वह गाँव तो दूर ही था और उसके पहले ही सूर्यास्त हो गया। हम तलाश रहे थे कि रात्रि में विश्राम के लिए कोई उचित स्थान मिल जाय!

सड़क के पास एक छोटी पहाड़ी थी और उस पर एक ढाल वाला ढाँचा (तीन ओर दीवार और ऊपर पतरे) नजर में आया। इस इरादे से कि वहीं विश्राम कर लिया जाय, हम उस ओर गए। साधु मर्यादा थी कि रहने के लिए किसी की मंजूरी अवश्य प्राप्त कर ली जाय। लेकिन वहाँ कोई भी दिखाई नहीं दे रहा था। अंत में उस ढाँचे के पीछे एक पगडंडी दिखाई दी, जो नीचे की ओर जा रही थी। इसलिए नीचे कोई होगा, उस आशा से वहाँ गए तो उसी ढाँचे के नीचे कुछ गुफा जैसा था और हम जैसे ही वहाँ पहुँचे कि उस गुफा में से एक सन्यासी बाहर आए। श्याम शरीर, पूरी तरह श्वेत लम्बी दाढ़ी और बड़ी-बड़ी आँखे!

हमने रात्रि में विश्राम के लिए अनुमति मांगी, तो सन्यासी ने सामने से सवाल किया-

"कहाँ से आ रहे हो?"

हमने कहा - "नवसारी से"

"कहाँ जा रहे हो?"

"पाटण"

"किस लिए"

"हमारे गुरुदेवश्री का महोत्सव है, उसमें उपस्थित होने के लिए!"

"आपके गुरुदेवश्री का नाम क्या है ?"

उन वृद्ध पुरुष के लगातार पूछे जा रहे सवालों से हमारी खीज बढ़ती जा रही थी, क्योंकि लम्बे विहार के पश्चात् हमें थकान भी बहुत लग रही थी। मन चाह रहा था कि जल्दी वे स्थान बता दें, जहाँ हम आराम कर सकें। बात करने की बिल्कुल भी इच्छा नहीं हो रही थी, लेकिन संन्यासी के सवालों के जवाब तो देने ही थे....इस लिए अनिच्छापूर्वक जवाब दे रहे थे, लेकिन उनके अंतिम सवाल के जवाब में जब पूज्य गुरुदेवश्री का नाम बताया, तब वे सन्यासी एकदम स्तब्ध हो गए, बल्कि इतना ही नहीं, वे अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त कर कहने लगे....।

"ओहो ! वाह क्या बात है ? आप अभयसागरजी के शिष्य हैं । बहुत आनन्द.... आइए..... अन्दर पधारें..... आसन स्वीकार करें।"

संन्यासीजी के इस अहोभाव से हम भी स्तब्ध हो गए....अच्छा ! यह व्यक्ति पूज्य गुरुदेवश्री को जानता है। हम अंदर गए, पूछा –

"संन्यासीजी ! आप हमारे गुरुदेवश्री को पहचानते हैं ?"

तब संन्यासीजी ने जवाब दिया.....

"अरे ! भाई आपके गुरु तो महाविभूति थे । मेरे परम उपकारी थे....आज भी मुझे उनकी याद आती है, तब आँखें आँसुओं से भर जाती हैं !"

यह सुन कर हम वहीं बैठ गए....थकान तुरन्त गायब हो गई।

संन्यासीजी की बातों में हम खो गए। मालूम ही नहीं पड़ा कि डेढ़ घंटा कहाँ गुजर गया.....

उस चर्चा में कई महत्वपूर्ण बातें जानने को मिली। पूज्य गुरुदेवश्री कितने गौरववंत थे, इसे और अधिक स्पष्ट करने वाले कई मुद्दे उसमें जानने को मिले। उन्होंने बताया कि वैसे तो वे तमिलनाडु की ओर के हैं पर यहाँ वनस्पति पर संशोधन कर रहे हैं ! वे जो भी संशोधन कार्य प्रारंभ करते हैं, तब सर्वप्रथम गुरुदेव अभयसागरजी म. की इजाजत लेने के पश्चात् ही वे उस प्रकरण में आगे बढ़ते हैं।

"अब किसकी इजाजत प्राप्त करते हो ?" – हमने पूछा।

"अब भी पूज्य अभयसागरजी म. की ही"

"परन्तु इस समय गुरुदेवश्री कहाँ हैं ?" – हमने पूछा

"वे रहे गुरुजी" दूर रखी एक खरल की ओर इशारा करते हुए संन्यासी ने बताया।

"वह तो खरल है!"

"हाँ, लेकिन मैं इसे गुरुदेव ही मानता हूँ।"

"कैसे ?"

"एक बार पालीताणा में हमारी मुलाकात हुई, तब गुरुदेव ने यह खरल दी थी! यह खरल जब से मेरे पास आई है, तब से मेरे सारे कार्य सफल ही होते हैं और इसलिए मैं इसे खरल नहीं अपितु साक्षात् गुरुदेव ही समझता हूँ!"

यह सुन कर हम आश्चर्यचकित हो गए। अन्य दूसरी कई बातें हुई। वहाँ से उठने का मन ही नहीं हो रहा था।

लेकिन प्रतिक्रमण आदि कई क्रियाएँ बाकी थीं,इसलिए उठना पड़ा.... उठते-उठते मालूम हुआ कि सन्यासी का नाम श्री भैरवानन्दजी है और उनकी उम्र ११९ वर्ष है।

इसके पश्चात् पुनः मुलाकात करने की तमन्ना थी और उसके लिए कोशिश भी की, तब मालूम हुआ कि संन्यासीजी दिवगंत हो चुके हैं....

सत्रह

पूज्य गुरुदेवश्री उस समय कपड़वंज में बिराजमान थे। पूज्यश्री संवत् २०२२ के चातुर्मास में बहुत अस्वस्थ हो गए थे।

लेकिन हर बार की तरह वे बिना कोई दवाई लिए स्वयं ही स्वस्थ हो गए। उसके पश्चात् तो चातुर्मास में पूज्यश्री ने खगोल-भूगोल के विषय में जबरदस्त कार्य आरम्भ कर दिया......

शास्त्रीय उल्लेख के अनुसार उन्होंने जंबूद्वीप का सर्वप्रथम मॉडल बनाया और आगमिक पदार्थों के श्रेष्ठ विद्वानों को आमंत्रित कर उनके साथ संगोष्ठी की.... व सर्वप्रथम वैज्ञानिकों को चुनौती दी कि पृथ्वी गोल नहीं है और पृथ्वी घूमती भी नहीं है।

(तब अपोलो की चन्द्रयात्रा की बात थी ही नहीं)

उस दौरान पूज्यश्री के परम-अनुरागी एक श्रावक पूज्यश्री का कुशलक्षेम पूछने के लिए आए..... औपचारिक बातों के माध्यम से पूज्यश्री को पूर्वाभास हो गया कि इन भाई को कोई महाव्याधि होने वाली है....

इसलिए वे उन भाई को अपने जप-खंड में ले गए..... और उन भाई को कुछ जप करने के निर्देश किए और स्वयं भी जप करने लगे...

कुछ समय के बाद उन्होंने एक शीशी निकाली.... उसमें वासक्षेप भर दिया। इस के पश्चात उन भाई का हाथ पकड़ कर हाथ की उंगली को खुली शीशी पर रख कर एक कपड़े से उसे ढंक दिया और गुरुदेव जप करते रहे....

जो भाई आए थे, वे तो पूज्यश्री के अनन्य अनुरागी थे..... इसलिए पूज्यश्री जिस प्रकार के निर्देश दे रहे थे, वे वैसे ही कर रहे थे और मन में श्री नवकार जप का रटन चालू था।

उंगली में सहनीय साधारण पीड़ा हो रही थी, फिर भी उन्होंने उसका कोई प्रतिकार नहीं किया।

लेकिन बीच में उनके मन में जिज्ञासा हुई कि पूज्य गुरुदेवश्री यह क्या कर रहे हैं.... हाथ पर रखा कपड़ा कुछ हटा, तब उन भाई ने देखा कि हाथ की उंगली से रक्त निकल रहा था और वह शीशी में जा रहा था और फिर वही रक्त दूसरी उंगली के माध्यम से पुनः शरीर में प्रवेश कर रहा था।

आश्चर्यमुग्ध कर देने वाली यह घटना थी, लेकिन वे भाई उस वक्त कुछ नहीं बोले और वह

क्रिया करीब आधा–पौना घंटा चलती रही.....

अन्त में क्रिया पूरी हुई..... इसलिए पूज्य गुरुदेवश्री ने वह कपड़ा ले लिया। शीशी को एक तरफ रख दिया......

पूछने पर गुरुदेवश्री ने स्पष्ट किया कि आपके रक्त में विकृति घूस गई थी...... यदि वह नहीं निकले तो आपको महाव्याधि हो जाती.... मुझमें करुणा उत्पन्न हुई, इसलिए शुद्धीकरण कर दिया। अब निश्चिंत रहें.....

वे भाई अब ८५ वर्ष की उम्र में भी उस घटना का वर्णन करते हुए गँदगद हो जाते हैं...और कहते हैं कि वह प्रक्रिया एक यांत्रिक डायलिसिस जैसी ही थी।

उसके ही प्रभाव से आज भी इतना स्वस्थ होकर मैं घूम–फिर रहा हूँ....

वालकेश्वर–मुम्बई में रहनेवाले भाई से उनकी यह बात सुन कर मैं भी अचंभित हो गया था।

पूज्यश्री ने श्री नवकार–महामंत्र के माध्यम से कितनी अद्भुत उपलब्धि हांसिल की थी।

धन्य गुरुदेव!

अठारह

इस सत्य घटना का स्थान है ऋषीकेश

इस घटना के न केवल प्रस्तुतकर्ता बल्कि गवाह व अनुभवकर्ता, ये दोनों जवान आज भी मौजूद हैं। मध्यप्रदेश का धरातल उनका जन्मस्थान हैं। इन दो में से एक जैन हैं और दूसरे हैं मुसलमान.......

जैन भाई तो सात्त्विक हैं ही, लेकिन मुस्लिमभाई भी उतने ही सात्त्विक। क्योंकि–

बचपन से ही परमकृपालु गुरुदेवश्री की यत्किंचित कृपा के भागी होने के कारण उन्हें निकटता की प्राप्ति हुई थी।

दोनों मित्र ऋषिकेश पहुँचे। दोनों का विषय औषधि–विज्ञान ही था, इसलिए कुछ वनस्पतियों पर शोध भी कर रहे थे....

जिसकी तलाश थी, उसकी प्राप्ति के लिए ऋषिकेश के हरित व बर्फीले मैदानों में घूम रहे थे....

दोनों साहसी थे, इसलिए वे अन्दर के भागों तक पहुँच गए.... एक चट्टान पर बैठ कर दोनों प्रकृति के मनोरम दृश्य निहार रहे थे....वहाँ उन्हें एक योगी-संन्यासी दिखाई दिए......जब वे नजदीक आए तो उन्होंने इशारे से बताया कि उन्हें भूख लगी है, पेट भरना है, इसलिए कुछ रुपये दे दें, उन्होंने तुरन्त ही दो रुपए निकाले और योगी को दे दिए....इतने में

वहाँ घास के पूले ले कर एक इन्सान आ रहा था। उस संन्यासी ने दो रुपए दे दिए और पूले खरीदे और नजदीक जो एक गाय थी, उसे पूले खिला दिए। उन दोनों भाईयों ने योगी से कहा-आपने तो अपनी भूख मिटाने के लिए रुपए मागे थे न ? इशारे से उन योगी ने कहा- "हाँ"

तब फिर आपने अपनी भूख न मिटाते हुए गाय को पूले क्यों खिला दिए? अब आप अपनी भूख किस प्रकार मिटाएँगे? मौनीबाबा ने पुनः इशारे से बताया कि गाय को खिलाने से अब उनका पेट भर गया है और उन्हें भोजन की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अब उन्हें भूख नहीं है।

योगी की बात सुन कर वे दोनों भाई चकित हो गए.......

उन्होंने योगी से पूछा.... "आप कहाँ जा रहे हैं?"

इशारे से बताया : "उस दिशा में कुछ दूर......"

"क्या हम भी आपके साथ आ सकते हैं ?"

"आपकी मर्जी" और योगी के साथ वे दोनों युवक चलने लगे.......

आगे योगी और पीछे दोनों युवक...... आगे जाने पर कलकल बहता एक झरना आया.... अब आगे कहाँ जाएंगे ? दोनों युवक इस बारे में कुछ विचार करें कि तुरन्त बाबा ने हाथ घुमाया... और झरना एक ओर हो गया.... योगी उसमें से गुजर रही

पगडंडी पर आगे बढ़े और आश्चर्य व कौतुक के साथ वे दोनों युवक भी उनके पीछे-पीछे चलने लगे.... आगे जाकर एक गिरिकंदरा आई...... तीनों ने उसमें प्रवेश किया और कुछ ही अंदर घुसे होंगे कि एक विशाल नाग ने अपना फन ऊँचा उठाया.... उसे देखते ही दोनों युवक भय से काँपने लगे.... वापस लौटने लगे तब योगी ने इशारे से समझाया.... "डरो मत... चले आओ" और वह नाग एक ओर सरक कर चला गया....

गिरिकंदरा में कुछ देर बैठक हुई.... साधना के सम्बन्ध में थोड़ा विचार-विमर्श हुआ...

दोनों युवक बोले जा रहे थे, लेकिन वे योगी वाणी का उपयोग न करते हुए मौनपूर्वक इशारे से ही अपने भावों को व्यक्त कर रहे थे और वह भी इतनी सुन्दर शैली में कि बोले बगैर भी मुद्दा पूरी तरह समझ में आ जाय। बैठक पूरी होने पर दोनों उठने लगे, तब योगी ने बताया कि-"आपने अपने सिर पर किसी गुरु को रखा है अथवा नहीं?" जवाब में जैन युवक ने "हाँ" कहा....

एक सलाई देते हुए योगी ने कहा....

"उनका नाम जमीं पर लिखो" जैन युवक ने अपने गुरु का नाम लिखने के लिए जैसे ही प्रथम अक्षर "अ" लिखा कि तुरन्त ही योगी ने सलाई ले ली और उस नाम को योगी ने पूरा कर दिया जिसे पढ़ा जा सकता था "अभयसागरजी"। दोनों युवक भौंचके हो कर स्तब्ध बन गए..... अरे क्या बात है? अपने गुरुदेवश्री को ये पहचानते हैं? स्पष्टीकरण के लिए पूछा। तब योगी ने उस नाम... को साष्टांग दंडवत प्रणाम किया... और फिर इशारे से उन दोनों को बताया कि आप बहुत भाग्यशाली हैं जो आपको ऐसे गुरु मिले हैं! फिर झरने तक वे योगी छोड़ने के लिए आए...... झरने को पार किया और हाथ के इशारे से प्रवाह को यथावत कर दिया और अंत में वे आँखों से ओझल हो गए।

उपरोक्त उदाहरण यह दर्शाने के लिए प्रस्तुत किया है कि एक साधक के रूप में भी पूज्यश्री का व्यक्तिव कितना व्यापक था।

उन्नीस

तब पूज्यश्री गिरनार में विशेष साधना के लिए रुके हुए थे।

संवत् २०३५ में फाल्गुन-चैत्र मास में उज्जैन के श्री संतोषजी एवं डग के हकीमजी आमिलजी पूज्यश्री का वंदन करने के लिए गए। उस समय पूज्यश्री रोज नित्य अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग योगियों से मिलते थे। आज भी पूज्यश्री ब्रह्म मुहूर्त में जब निकले, तब इन दोनों पुण्य आत्माओं ने भी साथ चलने के लिए निवेदन किया। पूज्यश्री ने अनुमति दे दी....और साथ चलने लगे। थोड़ा ऊपर चढ़ने के बाद दाएँ हाथ की ओर मुड़े। चलते-चलते दूर एक गुफा दिखाई दी। जरा और नजदीक पहुँचे तो देखा कि वहाँ लगभग १५ फुट की काया वाले एक योगी सोए हुए थे।

पूज्यश्री को देखते ही योगीजी अपनी काया को संकुचित कर सामान्य स्थिति में आ कर बैठ गए। उन्होंने पूज्यश्री को आदर सहित बुलाया। पूज्यश्री के साथ दोनों बैठ गए। योगीजी ने अपने पास की थेली में से आँवले जैसा एक छोटा फल निकाला और सीधे धूनी में डाल दिया। धूनी में आग थी, कुछ ही क्षणों में वह फल बहुत बड़े आकार में परिवर्तित हो गया। उसे लेकर उन दोनों व्यक्तियों को देते हुए कहा यह...ले...लो... और दूरवाली, शिला पर जाकर बैठो... और उसे खा लो अच्छा लगेगा। वे दोनों खड़े हुए और पहुँचे सीधे शिला पर और वहीं बैठकर फल खाने लगे। इधर ये दोनों योगी संस्कृत भाषा में चर्चा करने लगे। यह चर्चा लम्बे समय तक चली.... जिसका कोई सार ये दोनों नहीं पा सके। औपचारिकताएं पूरी कर पूज्यश्री बाहर आये। दोनों को लौटने का इशारा किया।

इन दोनों को जो फल मिला था उसका स्वाद इतना सुमधुर था कि ज़िंदगी में ऐसा स्वाद कभी चखा

नहीं था, इस लिए संतोषजी ने योगीजी को कहा....

"एक और फल मिल सकता है क्या ?" "नहीं, बस रवाना हो।" इतना कह कर योगी वापस गुफा की ओर मुड़ गए।

बीस

रमणभाई चौकसी ऊँझा का शायद ही कोई ऐसा जैन या गैर जैन होगा, जो इस नाम से परिचित न हो। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उन्हें सब पहचानते हैं। उनका ही यह किस्सा है। वे सिरदर्द की असहनीय वेदना से पीड़ित रहते थे। यह वेदना जब भी शुरु होती, तब रमणभाई हाल बेहाल हो जाते.... दीवाल से सिर टकरा-टकरा कर परेशान हो जाते।

इस तकलीफ को दूर करने के लिए जहाँ से भी आशा की किरण दिखाई देती, वहीं दौड़ जाते, किन्तु परिणाम शून्य.........

वे डाक्टरों, हकीमों एवं वैद्यों के घरों की सीढ़ियाँ चढ़ते रहे, पर दर्द में कोई राहत नहीं मिली।

एक दिन पूज्य गुरुदेव पंन्यासप्रवर श्री अभयसागरजी म. विहार करते हुए ऊँझा पधारे। रमणभाई तो पूज्यश्री के विशेष परिचित एवं भक्त भी....

उन्होंने अपनी पीड़ा की व्यथा पू. गुरुदेवश्री को बताई...

"साहब ! असहनीय वेदना से पीड़ित हूँ, इससे तो मौत अच्छी, ऐसे विचार आ जाते हैं। अब तो आप ही इसका कुछ हल बताइए... बाकी सब उपाय करके तो हिम्मत हार चुका हूँ।" "रमणभाई चिन्ता न करो। दोपहर १२.३० बजे के आसपास आ जाना। १२.३९ बजे आपका "वासक्षेप" करुँगा सब अच्छा हो जायेगा। और हाँ साथ में टोपी जरुर लाना।" ठीक समय पर रमणभाई पहुँच गये। प्रथम पूज्यश्री ने मस्तक पर वासक्षेप किया.... और मस्तक की वेदना एकदम शुरु हो गयी। तुरंत ही टोपी को भी अभिमंत्रित कर कहा, "सात नवकार मंत्र गिनकर टोपी को

मस्तक पर धारण कर लो।" जैसे ही टोपी को मस्तक पर धारण किया कि वेदना कम होने लगी और कुछ ही देर में पीड़ा शांत हो गयी.... और ऐसी शान्त हुई कि फिर इस वेदना ने जीवन भर उस ओर झांका भी नहीं। रमणभाई के आनंद का पार न रहा। इस घटना के बाद रमणभाई ने दो नियम पालने का निश्चय किया।

(१) सिर पर सदैव टोपी धारण करना

(२) जब भी पू. गुरुदेवश्री ऊँझा में हो अथवा उनके पास जाने का अवसर मिले, तब १२.३९ के समय पू. गुरुदेवश्री कें हाथों अचूक वासक्षेप करवाना.......

इक्कीस

रमणभाई के जीवन में पूज्यश्री के हाथों ऐसी ही दूसरी चमत्कारी घटना घटित हुई। रमणभाई के जीवन में वृद्धत्व का प्रवेश होने लगा। शरीर जवाब देने लगा।

रमणभाई को लगा कि शरीर जर्जरित हो, उसके पहले उपधान कर लूँ, नहीं तो शायद कभी नहीं होगा। उपधान तो पालीताणा में किया, परन्तु मन में एक ही ख्वाहिश थी कि माला तो पू. गुरुदेवश्री के करकमलों से ही पहननी है। उपधान-तप पूर्ण हुआ, ज्ञात हुआ कि गुरुदेवश्री वल्लभीपुर में बिराजमान है। अतः सपरिवार वल्लीभीपुर आकर धूमधाम से विधिपूर्वक माला पहनी।

पूज्य गुरुदेवश्री के हाथों माला पहनने के आनंद से हृदय बल्लियों उछल रहा था.... माला का विधिविधान पूर्ण हुआ, रमणभाई ने पूज्यश्री से अनुमति मांगी कि परिवार का बहुत आग्रह है कि गिरिराज के आसपास के तीर्थों की यात्रा करने जाऊँ ? पूज्य गुरुदेवश्री ने कहा - "तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं है। तुम सब यहाँ से सीधे अपने घर ही जाओगे.....।"

पूज्यश्री की आज्ञा मतलब बात पूरी, अन्य किसी विकल्प को कोई स्थान नहीं। परिवार के आग्रह को एक तरफ रखा और पूज्यश्री के आदेश को शिरोधार्य कर सीधे ऊँझा आ गए.....

दूसरे दिन रमणभाई को हार्टअटेक आया। नवकार महामंत्र का स्मरण करते-करते समाधिस्थ हो वे परलोक सिधार गये।

गुरुदेवश्री की आज्ञा न होती तो यह दुर्घटना कहीं भी घट सकती थी, ऐसे समय अनेक परेशानियों का सामनाकरना पड़ता सो अलग........

रमणभाई के साथ ऐसा होगा, पूज्यश्री को इसका अग्रिम एहसास कैसे हो गया होगा ? क्या ऐसी भविष्यवाणी को ही चमत्कार कहते हैं ? धन्य गुरुदेवश्री ! कितनी घटनाओं का स्मरण किया जाए ?

कितने प्रसंगों को लिखूं ? पूज्य गुरुदेवश्री के जीवन की विशिष्ट घटनाओं को लिखते वक्त कि स्मृति - कलश छलकने लगा..... एक पूरी हुई नहीं कि दूसरी...... दूसरी पूरी नहीं कि तीसरी..... तीसरी पूरी नहीं कि चौथी.... घटनाएँ उभरने लगी.... कितना लिखूँ ? अब कितना लिख सकूँ....... छोटी-सी इस पुस्तिका में स्थान ही कितना ?

इसके लिये तो बृहद ग्रंथ चाहिये..... ऐसा ग्रंथ इन सभी जानकारियों का संग्रह हो सके..... यह तो मात्र गागर है... छोटी सी......।

यहाँ तो बंधन है मर्यादा के...... । विशेष घटनाओं का आकलन नहीं......। संक्षिप्त में इतना ही बताऊँगा....।

पूज्यश्री एक विशाल कल्पवृक्ष थे...

उनकी छाया में आनेवाला प्रत्येक प्राणी अपने अपने स्तर का फल प्राप्त कर संतुष्ट होता था। इसका मूल बीज ही करुणामय था ? आध्यात्मिक शारीरिक पारिवारिक आर्थिक प्रत्येक समस्या का समाधान यहीं से प्राप्त होता था।

प्रत्येक रोग की दवा इस मेडिकल स्टोर में उपलब्ध थी...... परिणाम...... कितनी ही पुण्य आत्माएँ आध्यात्मिक शिखर को लांघ चुकी हैं। बहुतों को जीवनदान मिल चुका है ?

कितने ही मात्र वासक्षेप को श्रद्धा से स्वीकार कर इष्ट को प्राप्त कर पाए हैं।

कितने ही दरिद्रों ने पूज्यश्री की करुणामय जीवनधारा में अपने आप को सलामत महसूस किया है। अरे ! पूज्यश्री की बात कहाँ तक करनी ? पूज्यश्री के नाम का परचम आज एक बृहद भक्त वर्ग प्राप्त कर रहा है। एक भाई कहते हैं..... मैं तो 'पंन्यास अभयसागर गुरवे नमः' की एक माला रोज जपता हूँ। मेरा जीवन ही इस माला पर चलता है। किसी भी मुसीबत को दूर करने के लिये मेरे लिये तो यह एक मंत्र ही कारगर उपाय है । ऐसा था यह करुणा का भंडार। ऐसा था यह ज्ञान का सागर। इनके चले जाने से न जाने कितने जीव निराधार निरालंब बन गये अब कहाँ खोजूँ ? वह आधार ? कहाँ से प्राप्त करुँ ? वह अवलंबन ? है किसी के पास उनका एड्रेस......? पता...? था कोई संकेत......???

स्वाध्याय का झरना बना श्रुतिसागर

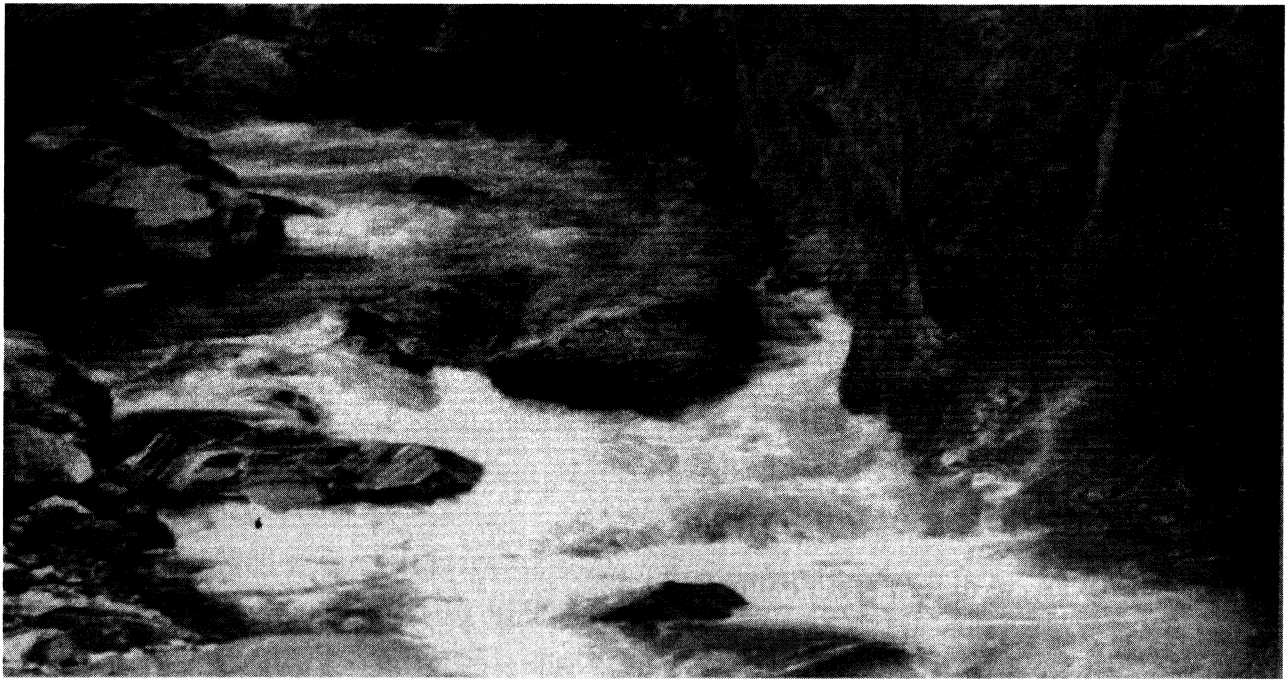

आगमोद्धारक आगम-रहस्य-वेदी-बहुश्रुतधर पूज्यपाद आनंद सागरसूरीश्वरजी म. के लिये आज के शीर्ष के विद्वानों की दृष्टि में सागरजी नामक इस विभूति का जीवन ही स्वयं में एक आश्चर्य था। क्योंकि मात्र ७५ वर्ष की समयावधि में ही इस महापुरुष ने इतनी ज्ञान-साधना, ज्ञान-संरचना, ज्ञान-सुरक्षा, ज्ञान-संवर्धन एवं ज्ञान-प्रसारण, किस प्रकार किया होगी ? अनेक संस्थाएँ साथ मिलकर भी जो कार्य न कर सकें, उस कार्य को इस एक व्यक्ति ने किस प्रकार किया होगा? निश्चित ही वे पूर्वजन्म में

पूर्वधर–महापुरुष ही होंगे। जिस प्रकार पूज्य सागरजी म. के लिये विद्वानों का ऐसा अभिप्राय है, वैसा ही अभिप्राय परमतारक, परम–कृपालु, ज्ञानावतार पू. गुरुदेवश्री (पं. श्री अभयसागरजी म.) के लिये भी अभिव्यक्त किया जाता है... । यदि पूर्वजन्म की कोई सशक्त ज्ञान साधना हो तो ही इस जन्म में ऐसी आश्चर्यजनक दान करने की श्रुतज्ञता हो सकती है। पूज्य गुरुदेवश्री ने अपने जीवन में व बहुत नाजुक उम्र में ही ज्ञानसाधना के कैसे–कैसे प्रखर लक्ष्य प्राप्त किये थे, उसकी एक प्रामाणिक नोंध मेरे हाथ लगी, जिसे पढ़ कर मेरी आँखें विस्मयता के क्षितिज की ओर फटी की फटी रह गयी।

ओह! ऐसी बेमिसाल ज्ञानसाधना ? वह भी पूर्ण चारित्र और शुद्ध सदाचार पालन के साथ। पूर्वजन्म की कठोर साधना के बिना यह संभव ही नहीं है, उस प्रकार की यह घटना है।

पूज्यश्री के पूर्वजन्म के सम्बन्ध में एक प्रामाणिक व्यक्ति के माध्यम से जानने को मिला कि पूज्यश्री पूर्वजन्म में वैताढ्य पर्वत पर विद्याधर स्वरूप में थे और उस जन्म में भी चारित्र स्वीकार किया था और यह सब जानकारी पूज्यश्री को थी। पूज्यश्री की वर्तमान जीवन–यात्रा के अवलोकन से हमें उपरोक्त कथ्य पर विश्वास करना ही पड़ता है। नामुमकिन को मुमकिन कर देनेवाली पूज्यश्री की ज्ञानयात्रा की कुछ झलकों की झलक हम यहाँ पेश कर रहे हैं..... पूज्य गुरुदेवश्री के पवित्र देह का जन्म विक्रम संवत् १९८१ की ज्येष्ठ कृष्णपक्ष एकादशी बुधवार को रात्रि १ से १.३० बजे के बीच हुआ था। उस समय भरणी नक्षत्र था और चन्द्रमा मेष राशि में था, तदनुसार वह दिनांक १७ जून, १९२६ था और जन्मभूमि थी उनावा (ऊँझा–गुजरात के नजदीक) । दीक्षा का स्वीकार विक्रम संवत् १९८८ अगहन कृष्णपक्ष एकादशी सोमवार को विशाखा नक्षत्र में हुआ, तब चन्द्रमा वृश्चिक का था, सवेरे सूर्योदय के समय शूलयोग में। उस दिन दिनांक था ४ जनवरी, १९३२ और वह स्थान था श्री शंखेश्वर महातीर्थ।

दीक्षा स्वीकार करने के पश्चात् प्रारंभ में उन्होंने जितने भी सूत्र कंठस्थ किए वे बगैर पुस्तक ही किए। अधिकांश सूत्र मुनिराज श्री दर्शनसागरजी म. के पास ही हुए। दर्शनसागरजी म. बुलवाते थे और बालमुनि बोलते थे। पांच प्रतिक्रमण इसी प्रकार जल्दी से याद कर लिए। चातुर्मास के पूर्व पाँचों प्रतिक्रमण कंठस्थ कर लिए। उसमें से पक्खिसूत्र जैसा जटिल व बड़ा सूत्र भी उन्होंने एक ही दिन में पादरा गाँव में कंठस्थ कर लिया था।

हमारे दर्शनदादा (पू. आ. दे. श्रीदर्शनसागरसूरि म.) भी हमें बताते थे कि अभयसागरजी का ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम जबरदस्त था। एक-दो बार बोले और बस याद रह गया।

प्रथम चातुर्मास डभोई में किया उसके चार माह तथा बाद के चातुर्मास तक उन्होंने अहमदाबाद के झांपडा की पोल के उपाश्रय के नजदीक रहनेवाले मास्टर सांकलचन्दभाई के पास व्यवहारिक अभ्यास प्रारंभ किया। मात्र ग्यारह महीनों की अवधि में गुजराती भाषा की सातवीं कक्षा तक का अभ्यास कर लिया और अभिधान चिन्तामणि कोश भी कंठस्थ कर लिया।

दूसरा चातुर्मास वेजलपुर (गोधरा) में बिताया और वहाँ सरियादवाले पंडित श्री हरगोवनदास संप्रतिचन्द के पास संस्कृत की दो पुस्तकों (मंदिरांत प्रवेशिका, मार्गोपदेशिका) का अभ्यास किया। इस चातुर्मास के बाद मालवा की ओर विहार हुआ। तीसरा चातुर्मास संवत् १९९१ का रतलाम में किया। यहाँ काशी के पंडितजी श्री काशीराम दुर्लभजी शास्त्री के पास सिद्धांत - कौमुदी का अभ्यास प्रारंभ किया जो संवत् १९९४ तक चलता रहा। इस दौरान लघु सिद्धांत कौमुदी, मध्य सिद्धांत कौमुदी व व्याकरण सिद्धांत कौमुदी कंठस्थ की और इन तीनों कौमुदी में मिल कर लगभग २०००+६०००+१२००० अर्थात २०००० श्लोक हैं। संस्कृत व्याकरण के इन तीनों ग्रंथों के द्वारा पूज्यश्री ने परीक्षाएँ भी दी। संवत् १९९३ में कोलकाता के पाठ्यक्रम के अनुसार व्याकरण

मध्यमा और काशी के पाठ्यक्रम के अनुसार साहित्य मध्यमा की परीक्षा देने का विचार किया, लेकिन इसे दर्ज करनेवाले ने "लेकिन उसमें....." बताकर तीन-चार पंक्तियाँ छोड़ी हैं। इसका अर्थ मैं समझता हूँ कि चाहे किसी भी कारणवश वे परीक्षा नहीं दे सके, लेकिन संवत् १९९४ में इन्हीं दो विषयों की परीक्षा दी, जिसके अंतर्गत व्याकरण प्रथमा व मध्यमा की तथा काशी के साहित्य के चारों खण्डों की परीक्षा दी और उसमें वे द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुए...... इस अभ्यास में भेलसा के पंडित श्री बलदेव शास्त्री व दक्षिणी पंडित श्री राजाराम पांडुरंग हिंजवेड़कर शास्त्री का योगदान भी बहुत महत्वपूर्ण रहा। संस्कृत भाषा पर अच्छा अधिकार हो जाय, इसलिए संवत् १९९३ में पूज्य गुरुदेवश्री के पास श्री त्रिषष्ठी-शलाका-पुरुष-चरित्र के एक से दस पर्वों को पढ़ा और उसके पश्चात् परिशिष्ट पर्व और दूसरे अनेक ग्रंथों को भी पढ़ा। इससे उनका संस्कृत भाषा पर अच्छा अधिकार हो गया और उसमें रुचि भी जागृत हुई इसलिए उसके पश्चात् स्वयं ही संस्कृत वांचन करते रहे। अनुमान है कि पांच वर्ष अर्थात संवत् १९९३ से १९९८ तक पन्द्रह हजार से अधिक श्लोक के बराबर का संस्कृत का अध्ययन किया। इससे पूज्यश्री की मानसिकता ही इस प्रकार बन गई कि गुजराती पढ़ने में चाहे उन्हें रस न आए, लेकिन संस्कृत पढ़ने में उन्हें अत्यधिक आनन्द आता था। इस अभ्यास के साथ ही दूसरी ओर जैन-धर्म का अभ्यास भी अपने गुरुदेव के पास किया और उसके अंतर्गत पाँचवें व छठे कर्मग्रंथ तथा द्रव्य क्षेत्र-काल-भाव नामक चारों लोकप्रकाश भी पढ़े।

विशेष रूप से यह भी दर्ज किया गया है कि कर्मग्रंथ को इतने सुन्दर ढंग उन्होंने से याद किया था कि नींद से उठा कर भी पूछो तो भी वे तत्काल जवाब देते।

संवत् १९९५ में कोलकाता की व्याकरण तीर्थ की परीक्षा दी और उस पाठ्यक्रम में व्याकरण के

महाभाष्य जैसे २५ ग्रंथों का समावेश था। इस पाठ्यक्रम का अभ्यास श्रावण माह में आरंभ किया और माघ माह में परीक्षा दी अर्थात मात्र छः माह में पूरे पाठ्यक्रम की तैयारी कर परीक्षा दी और उसे उन्होंने द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण किया।

संवत् १९९६ में पूज्यश्री के अभ्यास में रुकावट आई, क्योंकि टायफाईड के कारण वे बीमार हो गए थे। अब तक की उम्र में सिर या पेट आदि में कोई भी दर्द आदि उत्पन्न नहीं हुआ था, अर्थात रोग का नामोनिशान भी नहीं था, लेकिन अब कर्मराजा ने आक्रमण किया और उसमें तीन माह बीत गए, इसलिए उस अवधि में मात्र प्रकरणादि ग्रंथ व व्याकरण- साहित्य के छोटे अभ्यास ही कर पाए।

संवत् १९९१ में गोधरा में भुसावल-खानदेश के पंडित श्री लक्ष्मण वासुदेव शास्त्री मांडवगणे के तत्वावधान में न्याय क्षेत्र का अभ्यास प्रारंभ किया और उसके अन्तर्गत तर्क संग्रह, पंचलक्षी मुक्तावली आदि का अवगाहन किया।

वे झाबुआ गए और वहाँ पूज्य धर्मसागरजी महाराज (पूज्य गुरुदेवश्री के गुरुदेवश्री) ने हस्तलिखित साहित्य को पढ़ने के लिए प्रेरित किया, लेकिन चूंकि उसमें रुचि अधिक नहीं थी, इसलिए उस पर ध्यान नहीं दिया, इसलिए गुरुदेवश्री ने पुनःप्रेरित किया या यह भी कह सकते हैं कि उन्हें जबरदस्ती हस्तलिखित प्रतियों का अभ्यास कराया। प्रारंभ में क्लिष्टता व कठिनाई के कारण कुछ नीरसता रही, लेकिन बड़े भाई श्री महोदयसागरजी म. के शिष्य कविवर व प्राचीन-साहित्य के प्रेमी मुनि श्री न्यायसागरजी म. का साथ मिला, जिससे नीरसता समाप्त हुई और उस दिशा में मन उन्मुख हुआ, जिससे बाद में उनके जीवन का महत्वपूर्ण भाग हस्तलिखित साहित्य में ही लिप्त रहा। जहाँ-जहाँ वे जाते वहाँ पुराने साहित्य / हस्तलिखित साहित्य की अवश्य ही अवगाहना करते थे और अवगाहना के द्वारा कई जानकारियां उन्होंने उपलब्ध की............

संवत् १९९८ में दक्षिणी शास्त्री श्री काशीराम

सुखाराम मराठे से उन्होंने मुक्तावली पंचलक्षण का विशेष रूप से अभ्यास किया......

शारीरिक अस्वस्थता के कारण ओमानन्द स्वामी नामक एक संन्यासी से उन्होंने आरोग्य के लिए प्राणायाम, योगासन (कुल ८४ आसनों में से ७७ आसन) आदि सीखे। उस दौरान वैष्णव व अन्य धर्मों में बताए गए योगाभ्यास की सुविधा मिल जाने से उस प्रकार का अभ्यास भी किया।

संवत् १९९९ में आगमों का अभ्यास प्रारंभ किया, लेकिन शरीर ने साथ नहीं दिया..... और पूरा शरीर वात-व्याधि से जकड़ गया..... वर्ष में लगभग आठ माह वात-व्याधि का शिकंजा रहता था और तीन-चार माह स्वास्थ्य ठीक रहता था। यह सिलसिला संवत् २००५ तक रहा..... यह रोग जब प्रभावित करे, तब पूरा शरीर जकड़ जाय। शरीर का प्रत्येक जोड़ और उसके आसपास का भाग बहुत दर्द करे। कोई स्पर्श करे तो भी सहन नहीं कर पाएँ। विहार करना तो संभव ही नहीं था। उस दौरान निसर्गोपचार, वैद्योपचार आदि जितने भी उपचार ध्यान में आए, सभी उन्होंने कराए। इस वजह से चरक, सुश्रुत आदि वैद्यकीय ज्ञान-क्षेत्र में भी उनके उल्लेखनीय अध्ययन / प्रयोग हुए। चूँकि दूसरी कोई अन्य प्रवृति करना संभव नहीं था, इसलिए पठन/वाचन करने के लिए बहुत वक्त मिला। काव्य, ज्योतिष, छंद-साहित्य, इतिहास, शिल्प-स्थापत्य, अलंकार, भाषा-विज्ञान, राजनीति, मंत्रशास्त्र, तंत्रशास्त्र, योगविधि, प्रवचनकला, लेखनकला, मनोविनोद आदि क्षेत्रो में बहुत वाचन किया। दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक व मासिक पत्र-पत्रिकाएँ भी उन्होंने तब बहुत पढ़ी। लगभग दो हजार से पच्चीस सौ पुस्तक-पुस्तिकाओं को उन्होंने पढ़ा और अपना चिन्तन का दायरा व्यापक बनाया। इस पठन में जो उपयोगी महसूस होता उसकी वे नकल भी उतारते और उस काम के लिए ८० पृष्ठों से ३०० पृष्ठों की लगभग ७० से ७५ नोट बुक्स लिखी गई।

यह भी नोंध है कि व्याधि के उस दौर में विशाल-

ज्ञान संग्रह हुआ.... कहते थे कि व्याधि तब मेरे लिए समाधि और ज्ञान-निधि का मुकाम बन गई।

उस दौरान जब-जब वे स्वस्थ हो जाते, तब कुछ न कुछ ज्ञानार्जन कर ही लेते थे। उस अवधि में रतलाम व उज्जैन तथा भवानीमंडी में हिन्दी भाषा की पढ़ाई व्यवस्थित ढ़ंग से की और साथ ही बदनावर कस्बे के श्री मन्नालालजी शर्मा के वैष्णव ग्रंथों का अवगाहन किया। श्री मन्नालालजी चाहे गैर-जैन हों, लेकिन उनकी आध्यात्मिक विचार पद्धति गहन व प्रभावी थी। इसलिए उनके संपर्क से पूज्यश्री में भी आध्यात्मिक रुचि का आविर्भाव हुआ था।

इसी प्रकार के थे अरणोदवाले किशनलालजी महात्मा। यद्यपि ये धनाढ्य श्रावक थे घर में तीन पुत्र थे, फिर भी वे अलिप्त रह कर जंगल में ध्यानमग्न हो जाते थे और उनके साथ भी पूज्यश्री के बहुत अच्छे सम्बन्ध थे..... पूज्यश्री बताते थे कि उनमें जो भी यत्किंचित् आध्यात्मिकता मालूम पड़ती है, उसका माध्यम इन व्यक्ति का साथ भी रहा है।

किशनलालजी महात्मा को तो हमने देखा भी है और उनसे मिले भी हैं। बिलकुल विरक्त जीवन जीते थे... स्वयं बिना सिले वस्त्र पहनते थे अपने पास एक थैला और एक लकड़ी रखते थे... और स्वयं अलग-अलग गाँवों में घूमते रहते थे। जहाँ जाते वहाँ उपाश्रय में ठहर जाते थे। उनको माननेवाला वर्ग भी था। सत्संग भी करते रहते थे। हम जब डग कस्बे में थे, तब इन किशनलालजी को देखा था। अत्यन्त मितभाषी व मधुरभाषी थे। पूज्यश्री के साथ बैठ कर वे घंटों आध्यात्मिक चर्चाएँ करते थे। मेरा विचार है कि उनका झुकाव विशेष रुप से निश्चयनय की ओर सामान्यतः रहता था।

संवत २००० में बीमारी से जब कुछ राहत मिली, तब वे भी बुद्धिसागरसूरिजी के साहित्य की ओर उन्मुख हुए थे। उसके कुछ अंश उन्होंने अपने लिए लिख कर भी रखे थे।

बीमारी का प्रभाव संवत् २००१ में जब कम

हुआ तब वे छोटी सादड़ी मारवाड़ पधारे । बहाँ रहनेवाले सामान्य श्रावक भी श्रावक के साथ ही मंत्रशास्त्र के प्रखर ज्ञाता थे और ऐसे ही अच्छे साहित्य के एक प्रेमी श्री चंदनमलजी नागौरी के साथ उनका अच्छा संपर्क रहा और ये श्रावकजी पूजन के सम्बन्ध में उल्लेखनीय जानकारी रखते थे । पूजन कब करवाएँ ? किस प्रकार करवाएँ, इनकी उन्हें सूक्ष्म से सूक्ष्म जानकारी थी । पूज्य गुरुदेवश्री जो पूजन सिखाते थे, उसकी पद्धति आम ढर्रे से अलग, अनोखी ढ़ंग की होती थी और हम उसके स्वयं साक्षी हैं।

यद्यपि यहाँ यह इस विषय से सम्बन्धित नहीं है, लेकिन एक-दो घटनाओं को उदधृत करने की अनुमति लेना चाहूँगा, क्योंकि इसमें विषयान्तर अवश्य हो रहा है, लेकिन यह प्रासंगिक है । हम चातुर्मास मालवा के प्रतापगढ़ में बीता रहे थे । वर्षाऋतु प्रारंभ हो चुकी थी, लेकिन अषाढ़ महीना बीत जाने पर भी पानी की एक बूँद भी गिरी नहीं थी । प्रजा में हाहाकार मचा हुआ था, तब उपरोक्त श्री चंदनमलजी नागौरी पूज्यश्री के वंदन के लिए वहाँ आए और तब श्री सिद्धचक्र पूजन का आयोजन हुआ..... और दोनों ने साथ मिलकर विशिष्ट विधि के साथ पूजन संपन्न किया । इसमें न कोई आडंबर था और न ही किसी प्रकार की तड़क-भड़क..... लेकिन विधि की पूर्णरूपरेखा थी.... तब यह हमने हमारी नजरों से निहारा है कि पूजन के समय के साथ ही वातावरण में बदलाव आया और आकाश में घनघोर बादलों के साथ ऐसी झड़ी लग कर बरसात हुई कि मन्दिर के नजदीक एक नदी जिसमें एक सामान्य पानी का रेला बहता रहता था, अब वहाँ नदी का अत्यन्त तेज बहाव था और दोनों किनारों पर पानी की लहरें टकरा रहीं थी.... पूरे प्रदेश में आनन्द छा गया।

उसके पश्चात् बरसात का होना रोज का कार्यक्रम बन गया था... पर्यूषण समाप्त हुआ और भाद्रपद भी पूरा होने को आया, लेकिन बरसात की

रिमझिम की आवाज़ रोज सुनाई देती थी। अब लोग बरसात से परेशान हो गए।

तब गुमानज़ी के मंदिर में उपरोक्त विधिके अनुसार श्री सिद्धचक्र पूजन करवाया और उस समय ही बरसात ने विदाई ले ली... जनता ने पुनः उद्घोष किया। श्री नागेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु की प्राण-प्रतिष्ठा के समय पूज्यश्री ने इतने अधिक पूजन पढ़ाएँ कि कहना मुश्किल है और तब गोचरी वापरने का भी समय नहीं मिलता था। उसका ही यह प्रभाव है कि अज्ञात के भूगर्भ में बैठा श्री नागेश्वर तीर्थ आज पूरी दुनिया के प्रमुख तीर्थों की अग्रिम पंक्ति में दर्ज है...उस समय भी चंदनमलजी नागौरी उपस्थित थे।

इसी प्रकार संवत् २०२८ में राजकोट में श्री शशिकांतभाई मेहता के आग्रह से पूज्यश्री ने सिद्धचक्र पूजन पढ़ाया।

पूज्यश्री जब भी पूजन करवाते, तब उस पूजन में वही श्रावक बैठ सकता था, जिसके सिर पर चोटी हो।

यदि कोई बगैर-चोटी वाला श्रावक पूजन में बैठने की जिद करे, तब अभिमंत्रित किए गए नाड़े को चोटी के स्थान पर बांधकर चोटी को प्रस्थापित करते थे और तब ही उसे बैठने की पात्रता मिल पाती थी।

श्रावक चोटी वाला होना चाहिए और श्राविका भी चोटी वाली होना चाहिए। खुले बालों वाली स्त्रियों को पूजा में बैठने का अधिकार नहीं मिलता था।

पूज्यश्री श्रावक के लोच को मान्य नहीं रखते थे और उनका अभिप्राय रहता था कि गृहस्थ का मुंडित-मस्तक अमंगल होता है, इसलिए वह पूजन आदि में शामिल नहीं हो सकता है।

संवत् २०४२ में श्री अरविंदभाई के अधीन चारूपतीर्थ में कई पूजनों को पढ़ाया। आज चारूप का बदला हुआ स्वरूप संभवतः उसके प्रभाव की प्रतीति ही है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि ऐसी बीमारी के अवसरों पर पूज्यश्री ने कई क्षितिजों की यात्राएँ की हैं।

अब आगे दखते हैं—

संवत् २००२ में ऊँझा चातुर्मास में वे आधुनिक वाचन की ओर विषय उन्मुख बने।

स्वयं दैनिक समाचारपत्र आदि पढ़ते थे और उस दौरान ही पालनपुर के श्री मणिलाल खुशालचन्द परीख से परिचय हुआ। उस श्रावक के यहाँ अत्यधिक मात्रा में पत्र आते थे। इन पत्रों में यदि पूज्यश्री के योग्य कोई सामग्री हो तो उसके लिए उनका निर्देश था कि उसकी कटिंग या नकल पूज्यश्री को भेज दी जाए। पूज्यश्री उसमें से स्वयं जो पढते् थे, उसमें से सार छाँट कर विविधनोट-बुक्स वे तैयार करते थे। मारवाड़ में जब वे पधारे, तब एक महापुरुष (नाम नहीं बताया) की ओर से उन्हें अच्छा मार्गदर्शन मिला व शुभ संकेत भी मिले। बताया गया है कि वे संकेत संवत् २००६ में फलीभूत हुए हैं।

उस वर्ष प्राकृत-व्याकरण का अभ्यास किया। ज्योतिष के क्षेत्र में अच्छा अध्ययन किया। इसमें ज्योतिष के चार ग्रंथ (१) आरंभ सिद्धि (२) दिन शुद्धि (३) लग्न शुद्धि वनारचन्द्र पर अभ्यास किया। इसके समक्ष ओघनिर्युक्ति को पूरा पढ़ा और उसके बाद विशेष आवश्यक भाष्य की शुरुआत की और ५०० श्लोक/गाथा का वाचन किया और फिर वात-व्याधिका आक्रमण हुआ और उनका वाचन-अभ्यास रुक गया।

पूज्यश्री ने अपने जीवन में कुछ ग्रंथों को पेटन्ट रखा, जिनके नाम हैं श्री षोडशकज़ी, श्री ज्ञानसार, श्री अध्यात्म कल्पद्रुम, श्री उपदेश माला, श्री प्रशमरति, श्री अध्यात्मोपनिषद, श्री योगशास्त्र व शांत-सुधारस और इन ग्रंथों को कई बार उन्होंने पढ़ा, कई को पढ़ाया और इन ग्रंथो का स्वाध्याय जीवन के अंत समय तक जारी रहा।

संवत् २००३ में मंत्रशास्त्रों में प्राप्त सूचनाओं को अभ्यासरूप देने का एक अच्छा मौका मिला। वहाँ राधनपुर के श्री देवचंदभाई जो स्वयं एक प्रज्ञाचक्षु हैं,

उन्हें भी मंत्रशास्त्र का प्रचुर अनुभव था उनके साथ पत्र आदि के द्वारा संपर्क हुआ, जो बहुत फलदायी साबित हुआ... व कानोड गाँव के भंडार की हस्तलिखित प्रति भी बहुत उपयोगी रही व इसके साथ ही उदयपुर के अग्रगण्य सुश्रावक श्रीमदनसिंहजी कोठारी भी मंत्रशास्त्र के दीर्घ अनुभवी व्यक्ति हैं, उनका सहयोग भी उल्लेखनीय रहा... इस प्रकार इन समस्त परिबलों के आधार पर मंत्रविज्ञान का अच्छा प्रायोगिक व सैद्धांतिक अनुभव प्राप्त करने का उन्हें सुअवसर प्राप्त हुआ।

इसी वर्ष मंदासर जाना हुआ, संभवतः वैशाख माह था। यहाँ उपाश्रय के नज़दीक रहने वाले दिगंबर संप्रदाय के एक संपन्न अग्रणी सेठ के यहाँ प्रतिदिन ज्ञानचर्चा/स्वाध्याय आदि का कार्यक्रम चलता था। इन सेठ को पूज्यश्री की विद्वत्ता की जानकारी मिली, इसलिए उन्होंने अनुरोधकिया कि पूज्यश्री उनके वहाँ चल रहे स्वाध्याय केन्द्र में पधारकर ज्ञान-प्रकाश फैलाएँ... उनके वहाँ पूज्य गुरुदेवश्री सात-आठ दिन पधारे। इस स्वाध्याय स्थल पर दूसरे कई अन्य विद्वान भी आते थे, उनमें एक प्रखर विद्वान दिगंबर शास्त्री भी आते और उनके साथ भी गहन स्तर की अध्यात्म चर्चाएँ हुई... यह दर्ज किया गया है कि वे दिन भुलाए नहीं भुलाते...

इस वर्षाऋतु में रोगों का असर अधिक नहीं था, इसलिए स्वाध्याय की बहुत सुंदर सुविधा उपलब्धहोती रही और उस वजह से ही उस चातुर्मास में निम्न ग्रंथों का अध्ययन संभव हो सका...

श्री अनुयोगद्वार का टीका सहित वाचन...

श्री ओघनिर्युक्ति का टीका सहित वाचन...

श्री दशकालिक का मूल से वाचन...

श्री उत्तराध्ययन का मूल से वाचन...

श्री आचारांगसूत्र का मूल से वाचन...

श्री सूयगडांग का मूल से वाचन...

श्री ठाणांग का मूल से वाचन...

श्री समवायांग का मूल से वाचन...

श्री ज्ञाताधर्मकथा का मूल से वाचन...

श्री उपासकदशा का मूल से वाचन...

श्री अनुत्तरोपपातिक का मूल से वाचन...

श्री अंतगडदशा का मूल से वाचन...

श्री चतुःशरणादि दशपयन्ना

श्री द्वयाश्रय महाकाव्य

श्री महावीर चरियम्

श्री सुदंसना चरियम्

श्री रयणसेहरी कहा

आदि का वाचन हुआ। इस वाचन के साथ ही उनमें से प्राप्त महत्वपूर्ण मुद्दों को संग्रहित भी किया गया। लगभग ३०० पृष्ठों की एक पुस्तिका पूरी भर गई।

इसी वर्ष मुनिरत्न श्री सुशीलसागरजी म. से बहुत निकट परिचय हुआ। ये मुनि बहुत अध्यात्मप्रेमी थे। पूर्ण रूप से निराले ढंग के निरपेक्षभाव वाले ये मुनिराज थे। इन मुनिश्री के लिए पूज्यश्री ने बताया है कि उनकी आध्यात्मिक भूमि को सुदृढ़ बनाने वाले कई परिबल रहे हैं, लेकिन इन मुनिवर के समागम के तुल्य दूसरा अन्य कोई भी परिबल नहीं था।

संवत् २००४ की घटनाओं में अभ्यास की एक घटना भी बहुत अच्छे ढंग से दर्ज है। मंत्रशास्त्र के संबंधमें इसके पूर्व जो प्रायोगिक व् सैद्धांतिक अभ्यास किया गया था, उसका प्रमाण इस घटना से जानने को मिला।

उस वर्ष माघ, फाल्गुन व चैत्र इन तीन महीनों में सतत श्री केशरियाजी तीर्थ का आंदोलन जोर-शोर से चल रहा था। उसमें मांगरोल गाँववासी श्री जलवबहनने उपवास किए थे। वे गर्मी के दिन थे, फिर भी उपवास की संख्या चालीस तक पहुँच गई थी। उस समय सतत चोबीस घंटों तक विपर्यख्त श्री

नवकार व श्री उवसग्गहरं स्त्रोत का अखंड जप चालू रखा था। इसके फलस्वरूप अच्छी सफलताएँ मिलीं। (इसके संबंधमें अतिरिक्त विशेष विवरण जैसे कि आंदोलन क्यों किस प्रकार की सफलता मिली आदि की जानकारी की नोटें उपलब्धनहीं है।)

विहार कर उदयपुर पधारे तब वहाँ धानमंडी देरासर में एक खरतरगच्छीय यति रहते थे और उनका नाम मगनविजय था। उन्हें स्वर्गस्थ हुए १५० वर्ष हुए थे। यहाँ कानोड वाले श्री भगवतीलालजी पोखरना (जो अचलगढ़ के कार्य का प्रबंधन संभालते थे) से संपर्क हुआ। अनेक माध्यम से उपरोक्त दिवंगत मगनविजयजी यतिजी का संपर्क हुआ। आज तक भूत-प्रेत आदि की कई बातें सुनी थीं, परंतु प्रत्यक्ष परिचय नहीं हुआ था, लेकिन व्यंतर-निकाय में रहने वाले मगनविजयजी द्वारा कई अनुभुतियाँ हुई। स्पष्टीकरण के साथ कई प्रकार की बातें होने लगीं... मंत्रशास्त्र से संबंधित कई संग्रहित शंकाओं का समाधान प्राप्त हुआ। श्रेष्ठ मंत्र की प्राप्ति भी हुई। अनुरोधकरने पर पहले व दूसरे नर्कों को नज़ारों के सामने देखा। विषम परिस्थिति के लिए अंत में सुरक्षा कवच भी दिया (ऐसा नहीं कि मात्र वचन ही दिया गया, बल्कि उसकी अनुभूति करने का सद्भाग्य भी मिला!)

उदयपुर के प्रखर तत्वचिंतक-अध्यात्मविद् व गहनचिंतक श्री भूरेलजीवलाल (नाम ठीक से पढ़ नहीं पाए) से संपर्क भी बहुत उत्तम रहा। जीवन में अध्यात्म की कीमत का अहसास उनके माध्यम से ही हुआ व्यवहारिक जीवन के सिद्धांतों का भी उत्तम परिशीलन हुआ।

इस वर्ष का अवधिमें न्याय दर्शन-क्षेत्र का अभ्यास जो छूट गया था, उसे पूरा करने का लक्ष्य निर्धारित किया और उसके अनुसार अहमदाबाद संन्यास-आश्रम के विद्वान न्यायाचार्य पंडितवर्य श्री दीनानाथ झा के पास पुनः

– मुक्तावली

- पंचलक्षणी–माथुरी–जगदीशी
- सिंह–व्याघ्र–लक्षण
- सिद्धांत–लक्षण
- सांख्य–तत्व–कौमुदी
- वेदांतसार
- अर्थसंग्रह
- पतंजलि योग दर्शन

आदि ग्रंथों का अभ्यास किया।

फिर कंठस्थ करने के लिए अमरकोश हाथ में लिया उसे भी लगभग शब्दश: याद कर लिया।

उनकी इच्छा थी कि इस अभ्यास के द्वारा काशी की दर्शन–मध्यमा परीक्षा दी जाय और इसके लिए जो कारवाई करना थी, वह की और दस रूपये जमा कर फार्म भी भर दिया... पाठ्यक्रम भी पूरा किया...

परीक्षा देने के लिए परीक्षा के केन्द्र वाले क्षेत्र में विहार करना था और उसकी भी पूरी तैयारी हो चुकी थी तथा विहार के दो दिन पूर्व ही वात–व्याधिकी पीड़ा प्रारंभ हो गई... शरीर जकड़ गया... संथारा के अधीन होना पड़ा... और परीक्षा की ख्वाहिश हवा बन कर काफूर हो गई। संवत् १९९९ में जो विचार आया था वैसा ही हुआ।

संवत् २००५ में पूज्यश्री अहमदाबाद पधारे और वहाँ पूज्यश्री की मुलाकात एक भरवाड़ (चरवाहे) से हो गई और उसका नाम था हरिभाई... ये व्यक्ति थे तो अनपढ़ लेकिन बहुत बहादुर थे और उनकी दो पत्नियाँ थी, उस वजह से वे दु:खी अवश्य थे, लेकिन मात्र बाह्य सृष्टि से... अंतर–दृष्टि से तो उनका सुख–वैभव सागर की लहरों की तरह हिलोरे ले रहा था। ऐसा कोई नियम तो नहीं है कि अध्यात्म प्राप्ति केवल पढ़े–लिखे लोग ही प्राप्त कर सकते है। अनपढ़ व्यक्ति भी अध्यात्म को उपलब्धहो सकता है। इसके लिए बाहरी ज्ञान की नहीं बल्कि आंतरिक प्रज्ञा की गहन समझ चाहिए और वह हरिभाई के पास बहुत

उच्च स्तर की थी... भरवाड़ होने के बावजूद भी वे श्री नवकार महामंत्र के एक उत्तम आराधक थे इतना ही नहीं श्री नवकार को उन्होंने आत्मसात् किया हुआ था। पूज्यश्री ने बताया है कि इन हरिभाई के समागम के कारण उनमें नवकार के प्रति विशेष लगाव उत्पन्न हुआ और उस वजह से अध्यात्म के क्षेत्र में वे अच्छा विकास कर सके...

इन हरिभाई के एक दूसरे साथी भी थे। वे सिंधी थे और बहुत बुद्धिमान थे ! वे स्वरोदय-ज्ञान के अनुभवी ज्ञाता थे। मात्र चन्द्रनाड़ी, सूर्यनाड़ी और सुषुम्ना की गति के द्वारा वे आगाहियाँ कर सकते थे। उनके माध्यम से पूज्यश्री ने भी उस दौरान स्वरोदय शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था।

यहाँ से महेसाणा पहुँचे और वहाँ पूज्य मोहनलालजी म. के समुदाय के पूज्य निपुण मुनि के साथ कर्मविचार नामक न्याय ग्रंथ का अभ्यास किया और उसी अवधिमें श्री मगनभाई परीक्षक के साथ योगविंशिका का अध्ययन भी किया।

पूज्य गुरुदेवश्री (महो. धर्मसागरजी म.) के पास योगदृष्टि समुच्चय व योगबिंदु का अभ्यास किया।

पूज्य हरिभद्रसूरि म. द्वारा विरचित श्री उपदेशपद ग्रंथ का वाचन स्वयं ही किया !

इन सब अध्ययन के साथ ही हस्तलिखित साहित्य का भी उत्तम अभ्यास हुआ, साथ ही इसमें संशोधन व संपादन कार्य का भी अच्छा अनुभव उन्हें प्राप्त हुआ।

संवत् २००६ की नवरात्रि में (व्याख्यान व पूज्य गुरुदेव के साथ बोलने की छूट) विशिष्ट मंत्रसाधना करने का अवसर मिला और उसमें उन्हें उल्लेखनीय सिद्धियाँ व उपलब्धियाँ प्राप्त हुई। वह सिलसिला संवत् २००८ और उसके बाद तक चलता रहा... यद्यपि उसके बाद तो सब कुछ छोड़कर मात्र महामंत्र श्री नवकार से संबंधित साधना ही शेष रही थी।

अब तो अनेक लोगों के संपर्क में आने के बाद व उनसे हुई चर्चाओं और वार्ताओं में अनेक साधक महर्षि अरविंद के नाम का जिक्र करते थे। इसलिए महर्षि के साहित्य के गहन अध्ययन की इच्छा बलवती हुई। इस वर्ष मन की मुराद पुरी हुई। संपूर्ण साहित्य उपलब्धहुआ... और उनका अभ्यासपूर्वक वाचन भी किया। उन्हें मानने वाले व्यक्तियों के साथ विशेषरूप से संपर्क कर उनके साहित्य के संबंधमें गहन जानकारी एकत्रित की... उसमें सूरत स्थित युगांतर कार्यालय (नाम में संभवत: कुछ फर्क हो सकता है) के अध्यक्ष श्री रतिभाई का योगदान उल्लेखनीय रहा...

इस वर्ष हस्तलिखित साहित्य प्राप्त करने का अवसर भी मिला। उत्तम व प्राचीन हस्तलिखित साहित्य भी पढ़ने को मिला... कई अव्यवस्थित प्रतियों को उन्होंने व्यवस्थित किया... कई अप्रकाशित साहित्य को मुद्रित कराने का पुरुषार्थ भी उन्होंने किया।

इसी अवधिमें बालमित्र मुनि श्री सूर्योदयसागरजी म.सा. (स्वर्गस्थ पू. गच्छाधिपतिश्री) के समागम के साथ निम्न ग्रंथों का वाचन किया :

श्री षोडशक

श्री अंतगड्दशा

श्री अनुत्तरोववाई दशा

श्री विपाकसूत्र

श्री प्रश्न व्याकरण

श्री आवश्यक चूर्णि भाग-१-२

श्री स्याद्वाद-मंजरी आवश्यक-नियुक्ति भाग १

श्री पंचसंग्रह अपूर्ण

श्री पिंडनिर्युक्ति की व्यवस्थित वाचना हुई, उसमें लगभग पन्द्रह साधु और करीब १५० साध्वीजी पधारी थीं।

संवत् २००७ में निम्न ग्रंथों का अभ्यास हुआ।

श्री महानिशीथ सूत्र

श्री दशाश्रुतस्कंध

श्री ओघनिर्युक्ति

श्री स्याद्वाद-रत्नाकरावतारिका-दो परिच्छेद

श्री अवच्छेदक निर्युक्ति

श्री उववाई सूत्र...

इनमें से श्री ओघनिर्युक्ति का वाचन सामुदायिक वाचना के रूप में हुआ। उसमें करीब पच्चीस श्रमणवीर और लगभग साठ साध्वीजी पधारी थीं।

संवत् २००८ में पूज्यश्री के समक्ष एक नया क्षितिज उभरा। इसके कारण आधुनिक भूगोल-खगोल के संबंधमें संशोधन करना आवश्यक हो गया। तथा उस संशोधन के लिए यह जरूरी था कि आज के विज्ञान को भी गंभीरता से पढ़ा जाय...परंतु दुविधा यही थी जो भी अपेक्षित था वह सब साहित्य अंग्रेजी में ही उपलब्ध था... व आज तक अंग्रेजी भाषा की जरूरत महसूस ही नहीं हुई थी... चूंकि अब जरूरत उभरी थी, इसलिए उस भाषा-ज्ञान को समृद्ध किए बगैर आगे बढ़ना संभव नहीं था। वैसे प्रारंभ में अंग्रेजी से गुजराती में अनुवाद करने वाले व्यक्ति को मीडिया के रूप में रखा, लेकिन उससे अपेक्षित उपलब्धि महसूस नहीं हुई, इसलिए अंततः अंग्रेजी भाषा सीखने का तय किया।

बहुत कम समय में अच्छे स्तर की अंग्रेजी सीख ली... उसके पश्चात् तो उस भाषा के ग्रंथों का पठन प्रारंभ हो गया... सैकडों पुस्तकों-ग्रंथों को पढ़ लिया... पूज्यश्री की अंग्रेजी भी उतनी ही दुरुस्त व समृद्ध थी।

इसके अतिरिक्त इसी वर्ष जैन ग्रन्थों का भी वाचन हुआ इसकी सूची निम्नानुसार है...

श्री भगवतीजी सूत्र सातवें शतक तक

श्री रायपसेणी सूत्र

श्री षोडशकजी

श्री हरिभद्रीय अष्टकजी

श्री विंशिका पाँच तक

श्री अध्यात्म गीता

श्री समाधिशतक

श्री क्षमा छत्रीशी

श्री अध्यात्मसार

श्री देवचन्द्रजी की चौवीशी ग्यारहवें स्तवन तक

श्री आनन्दघन चौवीशी दसवें स्तवन तक सविवेचन

साढ़े तीन सौ गाथाओं का स्तवन टबा के साथ

श्री पुदगल गीता

श्री धर्मरत्न प्रकरण –छोटी टीका

श्री महानिशीथ सूत्र मुनि श्री त्रैलोक्यसागरजी म. व मुनि श्री सुशीलसागरजी म. को पढ़ाया।

संवत् २००९ की साहित्य यात्रा इस प्रकार की थी।

श्री रत्नाकरावतारिका चौथे परिच्छेद तक

श्री नयोपदेश अपूर्ण

श्री वीरदेवसूरिकृत जीवानुशासन

श्री योगशास्त्र सटीक–अपूर्ण

श्री महोपाध्याय श्री यशोविजयजी कृत धर्मपरीक्षा

श्री पांडवचरित्र

श्री धर्मबिन्दु ग्रंथ

श्री बृहत्संग्रहणी आ. श्री धर्मसूरि म. का ग्रंथ पूरा पढ़ा।

श्री व्यवहारसूत्र भाग–१–२

श्री चन्दतिलकोपाध्याय रचित साहित्य की

अपूर्व निधिके तुल्य (आठ हजार नौ सौ चौसठ श्लोक) श्री अभयकुमार चरित्र।

इतने ग्रंथ तो उन्होंने स्वयं पढ़े... पूज्यश्री को ग्रंथ पढ़ना अच्छा लगता था। स्वयं तो कभी खाली नहीं बैठते थे, लेकिन जो उनके साथ रहता था, उसे भी खाली नहीं बैठने देते थे। उसका तो मैं स्वयं भी साक्षी रहा हूँ। कई बार तो ऐसा भी हुआ कि उनके पास यदि कोई ग्रंथ नहीं है तो पंचप्रतिक्रमण का कोई सूत्र पकड़ लेते और उसके लिए सबको एकत्रित कर अनुप्रेक्षा का क्षेत्र खोल देते।

उस वर्ष तो ऐसा लगा मानों उन्होंने पाठशाला ही खोल दी हो... कई गुणीजनों को अनेक ग्रंथों का वाचन कराया...

पूज्य मुनिराज श्री सुशीलसागरजी को महोपाध्याय श्री यशोविजयजी कृत उपदेश-रहस्य, द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका सटीक, उववाई सूत्र मूल, रायपसेणी सूत्र, जीवाभिगम सूत्र (अपूर्ण) नंदीसूत्र मूल, योगबिंदु ग्रंथ, द्रव्य गुणपर्याय का रास आदि साहित्य पढ़ाया । उसी प्रकार पूज्यमुनि श्री शशिप्रभसागरजी म. को हरिभद्रीय श्री दशवैकालिक सूत्र, श्री ओघनिर्युक्ति, श्री पिंडनिर्युक्ति, श्री आवश्यकवृत्ति हरिभद्रीय, श्री कल्पसूत्र सुबोधिका आदि ग्रंथों को पढ़ाया। उन ग्रंथों को किस माह की किस तिथि को प्रारंभ किया और किस माह की किस तिथि को उसे पूर्ण किया, वह जानकारी दर्ज नहीं की गई है।

इनके अतिरिक्त एक अन्य सुश्रावक है जिनका नाम श्री नरोत्तमदास बी. शाह बताया गया है, वह भी अत्यंत भाग्यशाली आत्मा लगती है । क्योंकि उन श्रावक के लिए पूज्यश्री ने जो समय दिया हैं और उच्च स्तर के ग्रंथों का वाचन कराया है वह अभिनंदनीय ही कहा जायगा। हमारा इन भाई से कोई परिचय नहीं है। यदि संपर्क हुआ होता तो पूज्यश्री से संबंधित और कई नई-नई बातें जानने को मिलती।

इन सुश्रावक को जिन ग्रंथों का वाचन कराया गया...

श्री पाक्षिक सूत्र ग्यारह दिनों तक समझाया।

श्री निह्नववाय-सप्ताह में तीन दिन

श्री विविधतीर्थ कल्प

श्री कुमारपाल प्रतिबोध सप्ताह में तीन दिन (मंगल, बुध, गुरु)

श्री निह्नववाद तथा आत्मवाद

श्री तंदुलवेयालीय पयन्ना-सप्ताह में तीन दिन

आषाढ़ कृष्ण पक्ष प्रदोष से श्रावण शुक्ल पक्ष दशम तक श्री वासुदेव हिंडी १५०० श्लोक के पठन के बाद विराम।

श्री अध्यात्मोपनिषद

श्री क्षत्रियकुंड (त्रिपुटी म. का ऐतिहासिक ग्रंथ)

जैन परंपरा का इतिहास

इसके अतिरिक्त सूरत के नानूभाई को लघु क्षेत्र समास ग्रंथ का वाचन कराया।

संवत् २०१० में संपन्न ज्ञानयात्रा -

पूज्य गुरुदेवश्री के पास युक्तिप्रबोधग्रंथ पढ़ा।

इस ग्रंथ में जिसमें ४३०० श्लोक हैं, उसके वाचन की शुरुआत मुलुंड (मुम्बई) में कार्तिक कृष्ण पक्ष चतुर्दशी में की और समापन शापोर में अगहन शुक्ल पक्ष नवमी को हुआ। अर्थात् इस गुरु शिष्य की जोड़ी ने प्रतिदिन कितने अधिक घंटे इसके लिए दिए होंगे?

इसी प्रकार श्री जीवाभिगम सूत्र जिसमें १७०० श्लोक हैं, उसका वाचन भी उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री के पास किया। इसकी शुरुआत नासिक में अगहन कृष्ण पक्ष पंचमी को हुई और अकोला में फाल्गुन शुक्ल पक्ष अष्टमी को उसे पूर्ण किया।

इसके अतिरिक्त इस वर्ष दिगंबराचार्य सोमकीर्ति द्वारा सप्तव्यसनकथा को भी पढ़ा।

मात्र दो दिनों में एक पुस्तक जिसमें २०३४ सुभाषित थे, उसे भी पढ़ा।

धन्यचरित्र पद्य को मात्र पाँच दिनों में ही पढ़ लिया। उसमें समाविष्ट कई सुभाषितों को संग्रहित भी कर लिया।

कश्मीरी कवि श्री क्षेमेन्द्र द्वारा रचित ५०० श्लोकों वाली भारत-मंजरी (संक्षिप्त महाभारत) को मात्र दस दिनों में पढ़ लिया। उसमें समाविष्ट कई सुभाषितों को अपने पास संग्रहित भी कर लिया।

श्री आचारांग चूर्णि अपूर्ण को पढ़ा।

मेरे पास दर्ज जानकारी के अनुसार यही सब लिखा गया है। जो दर्ज नहीं हैं पता नहीं वे ज्ञान साधनाएँ कितनी होगी ? बगैर प्रमाण के क्या कहा जा सकता है ?

●

वाचना की रसधार...

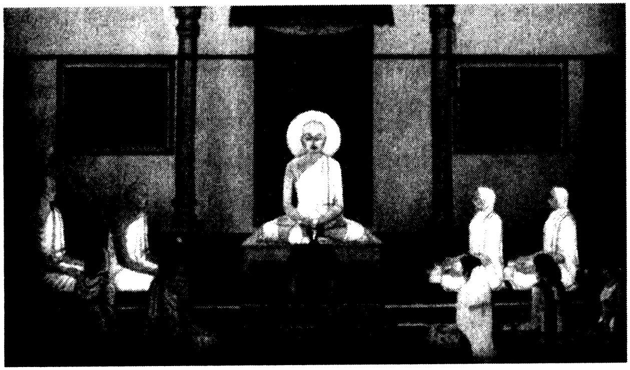

विनियोग साधना पिछले प्रकरण में हमने पूज्य गुरुदेवश्री की स्वाध्याय साधना और ज्ञान-प्रवृत्ति पर दृष्टिपात किया। यहाँ अब पूज्यश्री कि विनियोग-साधना की जानकारी प्राप्त करते हैं...

पूज्यश्री बारंबार कहते थे कि आज व्याख्यान की अपेक्षा वाचना अधिक उपयोगी है। व्याख्यान में एक ही मुद्दे को इतना विस्तृत कर दिया जाता है कि संबंधित ग्रंथ शायद ही पूर्ण हो सके। जबकि वाचना शास्त्र की पंक्ति के आधार पर हो सकती है। अपने इस विचार को सफल बनाने के लिए पूज्यश्री यत्र-तत्र वाचना का आयोजन करते और उनमें मौलिक ग्रंथों पर प्रभावी ढंग से रोशनी डालते।

साथ ही पूज्यश्री की वाचना पद्धति बहुत ही सुन्दर, सुगम, सहज व सरल होती थी। शास्त्र की पंक्तियों को व्याकरण के माध्यम से स्पष्ट करने की उनकी अपनी विशेषता थी। इसके अलावा शास्त्रीय तत्वों के मूल में निहित ऐदमपर्याय अर्थ (गुरु परंपरा से प्राप्त अर्थ) तक ले जाना उसकी खासियत थी। इसलिये पूज्यश्री की वाचना में प्रबुद्ध पुण्यात्माओं की सदैव भीड़ रहती थी। यहीं नहीं बल्कि जब भी बड़े-बड़े आचार्य आपस में मिलते थे, तब पूज्यश्री से वाचना की अपेक्षा रखते थे।

इतना मुझे याद है कि पिंडवाड़ा में पूज्य आचार्यदेव श्री प्रेमसूरि म., कपड़वंज में पूज्य गच्छाधिपति श्री मणिक्यसागरसूरि म., शिवगंज में पूज्य आचार्यदेव श्री रामसूरि म. (डहेला वाला), पालीताणा में पूज्य आचार्यदेवश्री रामचन्द्रसूरि म.,

शंखेश्वर में पूज्य आचार्यदेव श्री कलापूर्णसूरि म. समी और साबरमती में पूज्य आचार्यदेव (उस समय पंन्यास) मुक्तिचन्द्रसूरि म., अहमदाबाद में पूज्य आचार्यदेव श्री हेमचन्द्रसूरि म. (उस समय मुनि) आदि ने पूज्यश्री से आग्रह कर वाचना कराई थी।

अपने शिष्य परिवार के लिए तो वे वाचना की बाढ़ ले आते थे। परिवार यदि बड़ी संख्या में एकत्रित हुआ हो तो चार-चार बार वाचना का आयोजन करते, जिससे साधु को दूसरी कोई अन्य ऐसी-गैरी प्रवृत्ति करने के लिए वक्त ही नहीं मिलता था। गपशप या हंसी मजाक करने के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रहे।

उन वाचनाओं में पूज्य गुरुदेवश्री उन अनूठे तथ्यों को प्रस्तुत करते कि वह हम जैसों के दिमाग में व वर्तमान काल के संदर्भ में असंगत लगती थीं। समाचारी (लोकव्यवहार) प्रवृत्ति आज भी कितनी अधिक समय-संगत है, उसकी समझ स्पष्ट रूप से हो जाती थी।

इसमें भी पूज्य गुरुदेवश्री अपने समूह में सदा वाचना आयोजित करते ही थे। लेकिन उसके पश्चात् पूज्यश्री ने भी समूह में व सार्वजनिक रूप से वाचना देना आरंभ किया।

इन्दौर चातुर्मास के दौरान संवत् २०२३ में वेजलपुर के सुश्रावक रतिलाल पानाचंद गांधी आए थे। उन्होंने पूज्यश्री से अनुरोधकिया।

''साहब ! सुकृत करने की भावना उभरी है। उस बहाने से प्राप्त लक्ष्मी का सद्व्यय करने की इच्छा है, आप बताएँ, मुझ से कौन सा सत्कार्य हो सकता है?''

तब पूज्यश्री ने कहा कि आज की देश काल की स्थिति के अनुसार आगम वाचना बहुत जरूरी है। पूर्व काल में ऐसे आयोजन होते थे, जिसके द्वारा चतुर्विधसंघ और उसमें भी विशेष रूप से पूज्य श्रमण श्रमणीवृन्द आगम पदार्थों व रहस्यों से संबुद्ध बनते थे।

"इसके लिए क्या करें ?"

अधिक से अधिक पूज्य साधु-साध्वीजी एकत्रित हों और करीब दो माह तक प्रतिदिन चार से पाँच घंटे तक वाचना होनी चाहिए। आपके वेजलपुर जैसे छोटे गाँव में अधिक से अधिक साधु पधारें। उन्हें गोचरी व पानी निर्दोष मिले, उसके लिए वाचना के साथ ही उपधान की आराधना भी आयोजित की जाय तो उससे चतुर्विघसंघ की भक्ति का लाभ भी मिल सकता है।

रतिभाई को यह मंतव्य पूरी तरह समझ में आ गया। वेजलपुर संघ के समक्ष उन्होंने यह विचार प्रस्तुत किया। संघ ने भी इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसी दौरान रतिभाई को बड़ी उम्र में एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। आगम वाचना के वातावरण में जन्म होने के कारण पुत्र का नाम भी देवर्द्धि रखा गया (देवर्द्धि लगभग १५०० वर्ष पूर्व के वे महापुरुष थे, जिन्होंने आगमों को सर्वप्रथम लिपिबद्ध किया था)। योजना की कामयाबी के लिए चारों ओर से तैयारियाँ होने लगीं। इसके फलस्वरूप संवत् २०२४ पौष शुक्ल पक्ष पंचमी को भव्य ठाठ बाट से आगमयात्रा निकालने के साथ ही आगम वाचना का शुभारंभ हुआ और तब रतिभाई के परिवार के सभी सदस्यों ने सोने की गिन्नियों से आगम पूजन किया...

यह आगम-वाचना रोज सुबह ९ बजे और दुपहर में २ बजे से ४ बजे तक होती थी। उसमें श्री आचारांग सूत्र भाग-१ संपूर्ण (शीलांकाचार्य की टीका)

श्री दश पयन्ना मूल

श्री नंदिसूत्र मूल

श्री यतिदिन चर्या

श्री आवश्यक सूत्र (अपूर्ण)

आदि ग्रंथों की वाचना संपन्न हुई। प्रत्येक

चतुर्दशी और अष्टमी को उपरोक्त आगम के स्थान पर पूज्य साधु साध्वीजी के आचार के संबंधमें वाचना होती। उस प्रकार की वाचना में साधु-साध्वी व दीक्षार्थी के अलावा अन्य कोई भी गृहस्थ वहाँ उपस्थित नहीं रहे, इस प्रकार का कठोर नियम था।

इस वाचना में

पूज्य महोपध्याय श्री धर्मसागरजी म.

पूज्य गणिवर्य श्री लब्धिसागरजी म.

पूज्य गणिवर्य श्री यशोभद्रसागरजी म.

पूज्य गणिवर्य श्री त्रैलोक्यसागरजी म.

पूज्य गणिवर्य श्री विमलसागरजी म.

पूज्य गणिवर्य श्री शांतिसागरजी म.

पूज्य मुनिराज श्री रामचंद्रविजयजी म.

आदि चालीस ठाणा उपस्थित थे और पूज्य आचार्यदेव श्री नेमिसूरि म. के समुदाय के तथा पूज्य आगमोद्धारक श्री आनन्दसागरसूरि म. के एक सौ से भी अधिक पूज्य साध्वीजी भगवंत तथा तीन सौ से भी अधिक उपधानतप के आराधक उपस्थित रहे थे।

लगातार दो माह तक चला वह ज्ञानयज्ञ बहुत ही रसप्रद व अनूठा लगता था।

वयोवृद्ध पूज्य त्रैलोक्यसागरजी आदि पूज्य बताते थे कि उन्होंने पूज्य आगमोद्धारकश्री की वाचना भी सुनी है, ठीक वैसी ही वाचना उन्हें यहाँ सुनने को मिलती है।

इसी प्रकार की दूसरी समूह वाचना संवत् २०२९ के चातुर्मास में उजमफई धर्मशाला अहमदाबाद में संपन्न हुई। इस चातुर्मास का मुख्य लाभ पूज्यश्री के परमभक्त हीराभाई कोयला वालों ने लिया। इस चातुर्मास में आषाढ़ कृष्ण पक्ष द्वितीया से कार्तिक शुक्ल पक्ष त्रयोदशी तक चली इस वाचना में-

श्री आचारांग प्रथम श्रुत स्कंध

श्री आचारांग द्वितीय श्रुत स्कंध

श्री अनुत्तरोपपातिक सूत्र

श्री अंतकृत दशांग सूत्र

श्री उपासक दशांग सूत्र

श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र

श्री विपाक सूत्र

श्री आवश्यक सूत्र भाग-३ हरिभद्रीय

आदि सूत्रों का वाचन हुआ।

इस वाचना में पूज्य महोपाध्याय श्री धर्मसागरजी म. आदि १४ ठाणे तथा पूज्य साध्वीजी म. ८० ठाणे और लगभग १५०० की संख्या का श्रोतावर्ग वहाँ उपस्थित रहा था।

इस वाचना में खतरगच्छ के भी कुछ विशेष ठाणे बहुत दूर से आते थे और आदर से उन्हें सुनते थे।

ज्ञानमंदिर से पूज्य आ. श्री मुक्तिचन्द्रसूरिजी आदि भी कभी-कभी पधारते थे।

इस वाचना में इतना अधिक उत्साह छलकता था कि वहाँ रोज लड्डू आदि की प्रभावना होती थी।

वाचना के समापन के अवसर पर भव्य रथयात्रा, गरिमामय महोत्सव व प्रभु महावीर से आज तक हुई आगम-वाचन तथा आगम-सुरक्षा का आयोजन भी हुआ। इससे पूरा माहौल आगममय बन गया...

इसके पश्चात् चातुर्मास के बाद छाणी (वड़ोदरा) जाना पड़ा, क्योंकि इस समय के मुनि श्री अशोकसागरजी, मुनि श्री जिनचन्द्रसागरजी, मुनि श्री हेमचन्द्रसागरजी की संसारी माताश्री मंगुबेन के समाधिमय स्वर्गवास के कारण जिनेन्द्र भक्ति महोत्सव का आयोजन वहाँ किया गया था।

इसके निमित्त पूज्यश्री के साथ मुनिश्री जिनचन्द्रसागरजी तथा श्री हेमचन्द्रसागरजी दीक्षा स्वीकार करने के पश्चात् नौ वर्ष में पहली बार छाणी पधारे थे, इसलिए संघ में अद्भुत उत्साह नज़र आ

रहा था। इन आगमवेत्ता पूज्यश्री के पधारने के कारण श्रीसंघने उनसे आगमवाचना के लिए अनुरोधकिया... पूज्यश्री के लिए इस प्रकार के स्वाध्याय का अवसर उनका मनपसंद लक्ष्य होता था । इसलिए संवत् २०३० के अगहन कृष्ण पक्ष प्रथमा से अगहन कृष्ण पक्ष प्रदोष तक वाचना का आयोजन हुआ । इस वाचना के लिए पूज्यश्री की प्रेरणा से मुंबई से आए चाणस्मावासी सुश्रावक श्री चंपकलाल केशवलाल ने आगम की भव्य शोभायात्रा का लाभ लिया।

प्रारंभ के छः दिनों में यह वाचना दोपहर २.३० बजे से ३.३० बजे तक चलती और बाद के दिनों में सुबह ९.३० बजे से ११.३० बजे तक चलती थी।

उस वाचना में पूर्ण उववाई-सूत्र पढ़ा गया।

इस वाचना में पूज्य महोपाध्याय श्री धर्मसागरजी म. के समूह के अतिरिक्त आ. श्री रामचन्द्रसूरिजी के पं. श्री अमरेन्द्रविजयजी, पूज्य मोहनलालजी म. के पं. श्री चिदानन्दजी आदि तथा पूज्य बापजी म. के समुदाय की लगभग ३५ साध्वियाँ व श्रावक-श्राविकाओं आदि का विशाल श्रोतावर्ग उपस्थित रहता था।

अंत में पौष दशमी को समूह अट्ठमतप की आराधना भी उत्तम ढ़ंग से संपन्न हुई।

पुनः संवत् २०३० का चातुर्मास अहमदाबाद की उजमफई धर्मशाला में ही किया गया। यहाँ इसबार आगम वाचना आयोजित की गई।

इस चातुर्मास का भी एक इतिहास है।

भगवान महावीर प्रभु की २५००वीं जयन्ती के अवसर पर भारत सरकार द्वारा आयोजित किए जाने वाले विकृत महोत्सव का शोर-शराबा चारों ओर अपना प्रभाव फैला रहा था, इस पर रोक लगाने के लिए महोपाध्याय दादा गुरुदेवश्री धर्मसागरजी म. अदालती ढ़ंग से आगे बढ़ रहे थे । इसलिए यह चातुर्मास अहमदाबाद में करना जरूरी हो गया था। अतः यह सुनिश्चित हो गया था कि चातुर्मास

साबरमती जैन संघ में किया जाय। लेकिन बाद में साबरमती संघ ने ही अनुरोधकिया कि चातुर्मास उनके संघ में नहीं किया जाय। इसके लिए कारण यही था कि सरकार द्वारा आयोजित कार्यक्रम के मुख्य सूत्रधार कस्तूरभाई लालभाई थे। इसका विरोधकरने वाले पूज्य महोपाध्याय श्री धर्मसागरजी म. थे। इसलिए उनके अपने संघ में ही कस्तूरभाई के विरोधमें आवाज़ उठे, यह साबरमती संघ के लिए उचित नहीं था। पूज्य उपाध्यायजी भगवंत ने तुरंत ही साबरमती में चातुर्मास करने के निर्णय को रद्द कर दिया...लेकिन चातुर्मास तो अहमदाबाद में ही करना था। तो फिर कहाँ करें ? अत: तय किया गया कि चातुर्मास उजमफई की धर्मशाला में किया जाय। इसके लिए स्वयं कस्तूरभाई ने ही अपनी ओर से प्रस्ताव रखा। क्योंकि उजमफई की धर्मशाला कस्तूरभाई के परिवार की ही थी। कस्तूरभाई का पूरा परिवार यहीं पर्यूषण आराधना आदि करता है। कस्तूरभाई ने तुरंत प्रसन्नतापूर्वक सहमति दे दी। एक ओर २५०० वें निर्वाण के महोत्सव के समर्थक और दूसरी ओर उसके विरोधी... लेकिन फिर भी दोनों ने एक दूसरे को समझ लिया और चातुर्मास का जयजयकार हो गया। इस समाचार से साबरमती संघ अचंभे में पड़ गया, आश्चर्यचकित हो गया। जिनके लिए हमने चातुर्मास निरस्त किया, उन्हीं कस्तूरभाई ने अपने ही उपाश्रय में (उजमफई की धर्मशाला) चातुर्मास कराया।

इस चातुर्मास में वाचना का बहुत सुंदर व प्रभावी आयोजन हुआ। आषाढ़ कृष्ण पक्ष द्वितीया से आगम वाचना प्रारंभ हुई और तब भव्य आगम यात्रा निकली और वाचना से संबंधित विविधचित्रपटों से सुज्जित विशाल कक्ष में वाचना का शुभारंभ हुआ।

इसमें सुयगडांग सूत्र प्रथम श्रुत स्कंधका वाचन कार्तिक शुक्ल पक्ष दशमी तक चला।

दुपहर २.३० बजे से ४.०० बजे तक की वाचना पूज्य उपाध्यायजी म. की निश्रा में चलती थी।

इस वाचना से चतुर्विधसंघ के लगभग ५००-

५५० भाविक लाभान्वित होते थे। उसमें अन्य गच्छीय व अन्य समुदायी पूज्य पंन्यास श्री भद्रंकरविजयजी आदि पूज्य भी पधारते थे।

संवत् २०३३ माघ शुक्लपक्ष के दौरान द मर्चेन्ट सोसाइटी, अहमदाबाद में अत्यंत सुचारु रूप से वाचना का आयोजन हुआ। इस वाचना के मूल स्त्रोत पूज्य बुद्धिसागरसूरि म. के समुदाय के पूज्य पं. श्री भद्रसागरजी म. थे।

●

मानो वि.सं. २०२२ में विराट प्रतिमां निर्मित
कराने हेतु सेवित स्वप्न ने ही
अयोध्यापुरम् तीर्थ के विशाल जिनालय में
साकार स्वरुप ले रखा है । ईस से
पूज्य गुरुदेवका मुखारविन्द
मन्द मन्द हास्य बिखेर रहा है ।